

* हरि ॐ तत् सत् ब्रह्मणे नमः *

श्री मङ्गलोपदेश रसायन वेदान्त

लेखकः—

श्री वेदान्त रस विन्दु इत्यादिक ग्रन्थों का निर्माण करने वाला श्री दुर्गाप्रसादात्मज,
सीताराम गुप्त काँधला निवासी।

"दिवसास्ते महान्तस्ते, संपदस्ताः क्रियाश्चताः।
सर्वं स्मृति पथं यातं, यामो वयमपि क्षणात्॥"
(श्री वाल्मीकीय महारामायण)

सम्वत् १९८५ विक्रमी

प्रथवार ५०० मूल्य श्रद्धा

॥ ओं तत् सत् ब्रह्मणे नमः ॥

समर्पणम्

यह पुस्तक

॥ मङ्गलोपदेश रसायन ॥

श्री परमहंस परिव्राजकाचार्य, ब्रह्म विद्र वरिष्ठ, हृषीकेश श्री कैलाशाश्रम के मुख्य संरक्षक, श्री १०८ मत् स्वामी गोविन्दानन्द गिरि जी महाराज के कर कमलों में, सादर सविनय इस लेखक ने समर्पण की, स्वीकार होवे ॥

॥ शुभं भूयात् ॥

कांधला
संवत् १९८५ विक्रमी

सेवक
सीताराम

* हरिः ॐ तत् सत् श्री मङ्गल मूर्त्तये नमः *

❀ श्री मङ्गलोपदेश रसायन ❀

विषय की सूची।

श्रद्धा के अश्रुपात ॥ १ ॥
प्रश्नोत्तर रत्न मालिका ॥ २ ॥

(१) हे भगवन् यह जगदाडम्बर क्या है, और इस के निरूपण के लिये भिन्न भिन्न वाद की कल्पना कैसे हुई, तथा मुख्य सिद्धान्त क्या है, सो कृपा करके कथन कीजिये ॥

(२) हे भगवान् अपरोक्ष ज्ञान के पश्चात् विद्वान को सदा स्मृति रहती है अथवा नहीं, और आत्मा का, अनुमान प्रमाण से जन्यविज्ञान, हो सकता है या नहीं, सो कृपा कर के कहिये ॥

(३) " यच्छेद् वाङः मनसि प्राज्ञः " इस श्रुति में, यच्छ शब्द से, श्रुति के उपदेश का क्या तात्पर्य्य है ?

(४) एतरेय उपनिषद् में, जाग्रदादिक तीनों अवस्थायें, स्वप्नरूप क्यों कहीं हैं ? ॥

(५) हे भगवन् " सर्व भूतेषु चात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि। ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शिनः " ॥ इस श्लोक में, श्री भगवान ने, सर्व भूतों का, और उन में एक ही आत्मा का दर्शन करना, तथा एक आत्मा में सर्व भूतों का दर्शन करना,

यह समदर्शी योगी का लक्षण कहा। इस से ज्ञात होता है, कि भूत और आत्मा दो वस्तु हैं, तब अद्वैत दृष्टि कहां हुई। कृपा कर के इस शङ्का का समाधान कीजियें ॥

(६) हे भगवन् कृपा करके यह कथन कीजिये, कि देहाभिमान की निवृत्ति, किस प्रकार से की जावे ॥

(७) श्री वाल्मीकीय महारामायण में, श्री वसिष्ठ जी ने, श्री राम जी को, यह उपदेश किया हैं :–"दृष्ट्वा रम्य मरम्यं वा स्थेयं पाषाण वत् सयम्। एतावदात्मयत्नेन जिता भवति संसृतिः"॥ इस श्लोक का क्या भावार्थ है ?

(८) हे भगवन्, जो सुख अनुभव में आता है, वह तो सोपाधिक और अनात्मा है, परन्तु आत्मा को सुख स्वरूप सुना है। यह आत्मा का, स्वरूप–भूत सुख, अन्य सुखोंकी न्याई, कुछ अनुभव में नहीं आता है, इस लिये उस को कैसे समझना चाहिये ? ॥

(९) हे भगवन्, समाधी क्या होती है, और सहजावस्था किस को कहते हैं, कृपा कर के निरूपण कीजिये ॥

(१०) हे भगवन्, अविद्या क्या है, कृपा कर के कहिये, और उसकी निवृत्ति का उपाय भी, कथन कीजिये ॥

(११) हे भगवन्, " अहं ब्रह्मास्मि " " सर्वं खल्विदं ब्रह्म " " अहमेवेदं सर्वं " " नेति नेति " इत्यादिक, श्रुति सम्मत अपरोक्ष ज्ञान, होने के पीछे, शास्त्र उस विद्वान् को, जीवन मुक्त, ब्राह्मण ब्रह्मनिष्ठ, इत्यादिक, नामों से कहते हैं, तथा श्री मद्भगवद्गीता में, श्री भगवान ने, भगवद् भक्त, स्थित प्रज्ञ,

और गुणातीत नामों से, उस विद्वान् के लक्षण भी, कथन किये हैं ॥ वह संपूर्ण लक्षण, ब्रह्मवेत्ताओं में, चरितार्थ होने योग्य हैं, ऐसा न हो तो, ज्ञानकी क्या परिक्षा होगी ? परन्तु वे सब लक्षण, नियम से, विद्वानों में, दृष्टि गोचर नहीं होते हैं, इस का क्या कारण है, और ज्ञानी के वास्ते काल चेपण के लिये, क्या उपाय है, यह कृपा कर के निरूपण कीजिये ॥

(१२) क्या विद्वान को, स्वरूपानंद आविर्भाव के निरन्तर रहने के वास्ते, सदा व्यवहार को, अल्प रखने की आवश्यकता है अथवा नहीं ॥

(१३) क्या व्यवहार काल में भी, विक्षेप के रहते हुए, स्वरूपानु संधान बना रह सकता है ?

(१४) "जो आसुप्त रामृते कालं नये द्वेदान्तचिन्तया" यह श्रुति है, सो ज्ञानी विद्वान के लिये, मरण पर्यन्त, वेदान्त चिन्तन की विधि को, कथन करती है अथवा मुमुक्षु के लिये ? प्रथम पक्ष तो युक्त हो नहीं सकता, क्योंकि विद्वान जो ज्ञानी है, सो विधि निषेध से विनिर्मुक्त कहा गया है। दूसरा पक्ष भी नहीं बनता है, क्योंकि मुमुक्षु भी, विद्वान् ज्ञानी होने वाला है, तब मरणान्त वेदान्त चिन्तान की विधि कैसे हो सकती है, कृपा कर के इस शङ्का का समाधान कीजिये ॥ पत्र मञ्जूषा ॥ ३ ॥ पूज्यपाद श्री स्वामी मंगल नाथजी महाराज के ३६ कृपा पत्र जो उन्हों ने अपने सेवक सीता राम को ८-७-१९२८ सन् ईस्वी से २७-७-१९२८ तक लिखे ॥

॥ हरिः ॐ तत् सत् श्री मङ्गल मूर्त्तये नमः ॥

❁ श्री मङ्गलोपदेश रसायन ❁

[प्रथम परिच्छेद ॥ श्रद्धा के अश्रुपात ॥ देहावसान ॥१॥]

सायंकाल का समय है, जी उदास हो रहा है, चित्त में भिन्न भिन्न विचार उदय हो रहे हैं, नाना प्रकार की स्मृतियां आ रही हैं कि इतने में श्री वाल्मीकीय महारामायण का एक पद याद आ गया "सर्वं स्मृति पथं यातं यामो वयमापि क्षणात्" ॥ कुछ धैर्य हुवा, पास दो मित्र आगये, बातें होने लगीं, कि भाई, एक पत्र हृषी केश से आया है पूज्य पाद श्री १०८ स्वामी मङ्गल नाथ जी महाराज का, बुध वारको प्रातः काल ७ बजे शरीरान्त हो गया ॥ पहले दिन पूर्णमासी थी, व्यास पूजा का दिन था दूर दूर के, लाहौरादिक स्थानों से, सज्जन वृन्द, गुरु पूजन के लिये आये थे, रोगी शय्या पर उन का पूजन किया गया था, लोगोंने पुष्प चन्दन से उन के शरीर का पूजन किया था, कि प्रातः काल ही रात्री व्यतीत होने पर उन के देहावसान का समाचार हृषीकेश भर में फैल गया और जिन्हों ने श्रद्धा से प्रति वर्ष उन के जीवित शरीर का पूजन किया था, उन्हों ने अगले दिन सदा के लिये शव का अंतिम् पूजन कर लिया, और पुष्प वर्षा के साथ अश्रु धारा की वर्षा भी हो गई ॥ अस्तु सबका अंतिम् परिणाम ऐसाही होताहै ॥

दैव वशात् यह व्यक्ति हृषीकेश नहीं जा सका था, क्यों कि श्री महाराज के देहरादून होने का समाचार विदित था और एक मित्र का पत्र गुरु पूजा से प्रथम दिन सायंकाल को पहुंचाथा

कि स्वामी जी हृषीकेश आचुके हैं, परन्तु तब इस के जाने के लिये, देरी हो चुकी थी। यह इस व्यक्ति का दुर्भाग्य था कि श्री महाराज के, उस समय दर्शन न हो सके, अस्तु " सर्व स्मृति के मार्ग पर चले गये हम भी क्षण में जाने वाले हैं" ॥

श्री महाराज के शरीर पर श्रद्धा रखने वाले जन संपूर्ण भारत वर्ष के दूर और समीप के, सब प्रान्तों में होंगे। क्या साधु महात्मा और क्या गृहस्थ, क्या धर्म जिज्ञासू और क्या ब्रह्म जिज्ञासू क्या धीर और क्या राजनैतिक कर्मवीर, क्या आर्य और क्या अनार्य क्या मित्र और कया शत्रुगण सभी उन पर श्रद्धा रखतेथे ॥ वे जैसे ब्रह्म निष्ठ योगीश्वर, वेद शास्त्रों के पारगामी थे, वैसे ही धर्म पर अत्यन्त आस्तिक थे—उन को झाड़ी हृषीकेश के महात्माओं ने २५ वर्ष से अधिक हुए तब, करुणा युक्तविनय से कहा, कि गो बछड़े आदिक को जङ्गली व्याघ्र आदिक खा जाते हैं, यह हम से देखा नहीं जाता, इस लिये एक गो शाला बन जाना उचित है ॥ उन को करुणा उदय हुई और गोशाला निर्माण का सङ्कल्प मात्र कर बैठे ॥ श्रीमान सद्गृहस्थों ने गोशाला स्थापन कर दी और उस का यथेष्ट पालन होने लगा ॥ उनकी इस शुभ प्रवृत्ति को देखकर, अन्य बहुत से महात्मा जनों को ईर्ष्या द्वेष उत्पन्न हुवा, यह प्रवृत्ति का स्वभाव है ॥ लग भग तब ही श्री भरत मन्दिर हृषीकेश के कुप्रबंध के सुधार के लिये स्वर्गीय, बाबा रामनाथ काली कमली वाले तथा रायबहादुर निहालचन्द जी तथा प्रधान मन्त्री टीहरी गढवालनरेश इन सज्जनों में मन्दिर सुधार की बात चीत हुई और श्री महाराज को उस में, साथ मिला लिया गया ॥ उन सब सज्जनों के शरीरान्त होते गये, और मन्दिर सुधार कार्य का भार यह अपने ऊपर ग्रहण किये रहे ॥ यह नियम है कि जिन को खेद पहुंचताहै चाहे वे कुपथ गामी हों, परन्तु वे विरोधी हाते ही हैं और उन के मित्रों तथा

सहायकों की ओर से जनापवाद होता ही है, परन्तु श्री महाराज, निर्भीक पुरुष थे, उन्हों ने जनापवादकी परवाह न करके धर्म प्रवृत्ति को नहीं छोड़ा, क्योंकि ऐसा करने से उन्होंने सोचा कि अन्य बहुत श्रद्धालु जन भी हमारी देखा देखी, धर्म पथ से भ्रष्ट हो जायेंगे॥ श्री महाराज इस व्यक्ति की कायरता की निवृत्ति के लिये अपने कषाय वस्त्र को दिखा कर, कहा करते थे कि भाई तुम लोगों को ही धर्म कार्य सहर्ष करना चाहिये क्या यह इस कषाय वस्त्र का धर्म है ? तात्पर्य यह है कि अपने सन्यास आश्रम के उच्च कोटि के नियमों के साथ साथ अस्मदादिकों के लोक संग्रहार्थ, श्री महाराज अन्य धर्म कार्यों में भी तत्पर रहते थे॥ वे कहा करते थे कि वीर पुरुष किसी पुरुषार्थ का अवलम्बन करके कायरता के वश अथवा मरण के भय से, कार्य को पूरा किये बिना नहीं छोड़ा करते हैं। उनके द्रोह करने वालों ने उनके अपघात के लिये बहुत सी बार क्रूर मनुष्य निर्माण किये, और इसकी सूचना यह व्यक्ति यू० पी० गवर्नमेंट तथा टीहरी दरबार को भी दे चुका था कि ऐसी बात चीत लोक में फैली हुई हैं, परन्तु वह बात थोड़ी तहकीकात होकर बीच में दबा दी गई और सरकार से सूचना मिल गई, कि सबूत न मिला, कागज भी नष्ट कर दिये गये। लेखक ने स्वयं लठ वाले क्रूरजनों को इस घात में बैठे रहते देख कर उचित आशङ्का की॥ उनके एक बार घेर लिये जाने पर भी उनको शत्रुगण की समीपता से निकल जाने का अवकाश मिल गया क्यों कि दैव योग से कुछ वर्ष जीना शेष था॥ इस पर भी वे अपने शरीर से बेपरवाह निडर और क्षमावान थे॥

जब वे अस्मदादिकों को उपनिषद् शास्त्र का गोशाला के आंगन में अध्ययन कराया करते थे, तो बहुत से साधु जो प्रगट आज्ञा लेकर नहीं श्रवण करते थे, अपने लाभार्थ बिना उनकी

आज्ञा को संपादन किये ही, अध्ययन करने को बैठ जाते थे उनमें सेकोई २ जन उनके विरोधी भी होते थे,परन्तु स्वामीजी समभाव से सबको अध्ययन कराते थे और शंकाओं का समाधान कर देतेथे॥

वे बड़े क्षमावान थे एक समय एक दर्शनी योगी ने उनसे प्रार्थना की, कि हृषीकेशके पंजाबी क्षेत्र या पंचायती क्षेत्र से कम्बल दिला दो, उन्होंने कहा आप स्वयं जाकर मांगलो, इतना कहने पर लेखक के सामने उसने उन पर गालियों का धारा बाही प्रवाह छोड़ दिया, वे हंसते हुये उठ कर चुप चाप कुटिया से बाहर जंगल को चले गये और उस महात्मा को कुछ उत्तर नहीं दिया। ऐसे बहुत से उदाहरण होंगे॥

यह इस व्यक्ति ने कईवार देखा है कि यात्रियों ने मार्ग में उनको रोक लिया,स्वामीजी ने वहीं पृथिवी पर बैठकर उपदेश कर दिया(वहीं बैठे २ चादरों और बादामों का ढेर लग गया, स्वामी जी सब कुछ वहीं छोड़ कर जंगल को चल दिये अन्य किसी महात्मा ने स्वयं सामग्री को उठा लिया॥

एक समय एक सद्गृहस्थ ने स्वामी जी को द्रव्य भेंट करने के लिये हाथ बढ़ाया, उन्होंने समझा, पुष्प भेंट करता है. जब उसने रुपिये हाथ पर धरे, तब हाथ पटक कर दूर कूद कर खड़े होगये, मानो किसी विच्छू ने काट खाया हो। आज कल कुछ कहीं थोड़े ही साधु महात्मा ऐसे त्यागी देखने में आवेंगे। पीछे पीछे यदि कोई सेवा करने की इच्छा करता था तो गोशाला में दान दे देता था॥

गोशाला के एक प्रेसीडेन्ट ने गोशाला के सुरक्षित धन, बीस हजार रुपिये को, बेदर्दी से उड़ाने के लिये मांगे। इन्कार करनेपर दोषारोपण करके कहा कि आपने आप लाभ उठाने के लिये जमा रखें हैं अथवा इस लिये कि मरने के पीछे आप की यादगार बने

उन्होंने इस कथन की कुछ भी परवाह नहीं की, क्योंकि रुपिया प्रजा का था और देहरादून में महाजन के पास जमा था ॥

श्री स्वामीजी को किसी भेष का पक्षपात नहीं था,वे सदा समदर्शी थे ॥ एक दिन इस व्यक्ति के सामने एक बम्बई के सेठ ने कहा कि तीन या चार लाख रुपिये के धन से एक धर्मशाला तथा मन्दिर बम्बई में बना दिये हैं, आप उसको संभालिये ॥ श्री महाराज ने कहा कि मैं सम्पूर्ण विश्व को अपना ही समझता हूं आप किसी योग्य साधू को वहां बिठला दीजिये, मुझे अवकाश नहीं है ॥

श्री स्वामी जी किसी का अनुचित रीति से या आलस्य पूर्वक कार्य करना, सहन नहीं कर सकते थे और उसको हितोपदेश करते थे जिससे अहंकारी लोग शिक्षा ग्रहण करने के बदले उन से अप्रसन्न हो जाते थे और विरोध करने लगते थे, परन्तु युक्ति प्रमाण और स्पष्टानुभव के सामने, उन अकार्य कर्ता जनों का अभिमान खण्डन हो जाता था ॥ एक समय श्री महाराज ने रस्सी बुरी तरह बांटते देखा,बस महाराज ने वहीं खड़े होकर उसके साथ मिलकर रस्सी बंटवादी और उसको उचित शिक्षा दी ॥

वे दुखित रोगी जनों के दुःख निवृत्ति के उद्देश से उन रोगियों के गृह पर जाकर उनकी सेवा टहल करते थे, और ऐसी धैर्य की बातें करते थे, जिस से दुःख भूल जाता था अथवा आर्त पुरुष अपने दुःख की परवाह ही नहीं करता था ॥

एक दिन कुछ भिक्षुकों ने श्री महाराज से कहा कि हृषीकेश अन्न क्षेत्रों में जो सदा अतका आटा मिलता है तथा जो साधू वर्ग को पका अन्न चावलादिक तथा दाल रोटी शाक मिलता है,अपवित्र मिलता है उसमेंकीडे होते हैं। यह बात सत्य है लेखक ने स्वयम देखी है और संचालकों को दिखलाई हैं। उस अन्नसे नाना उदररोग उत्पन्नहोते हैं और कष्ट बहुत होता है। श्री महाराजने उनको धैर्य

देकर समझाया कि यह तुम्हारे बड़े भाग्य हैं जो तुमको श्री गङ्गाजी का वास मिला है जिस के कारण कीटों से पूर्ण अन्न मिलता है, परन्तु आप लोग उस अन्नको महा पवित्र अन्न समझिये और यथा संभव शोधन करके, धैर्य पूर्वक तथा धन्यवाद पूर्वक थोड़ा २ खा लीजिये। इससे आप लोगोंका ईश्वरआराधन बहुत होगा, इन्द्रियोंका जय होगा, स्वतन्त्रता पूर्वक काल क्षेपण होगा, सत्सङ्ग बना रहेगा, और आप लोगों के सब पाप नष्ट हो जावेंगे॥ आप लोगों के उत्तम भाग्यों को देख कर देवता भी ईर्ष्या करते हैं, किस को ऐसी स्वतन्त्रता प्राप्त होती है?॥

गृहस्थ लोग शहरों में मैली दुर्गन्धित गलियों में रहते हैं और राग द्वेष से ऐसे सन्तप्त होते हैं, जैसे तेल में पूरियाँ सेकी जाती हैं॥ आप लोगों को अन्न की ओर से, किसी प्रकार की शिकायत नहीं करना चाहिये॥ वर्षा ऋतु है समुदाय का अन्न है, कर्मचारी भी रोगी हो जाते हैं, क्षमा करना चाहिये, और परमात्मा को धन्यवाद देना चाहिये कि भगवत् प्रेम में ऐसा सुन्दर अन्न, बिना परिश्रम के मिला।

यह मनुष्य शरीर उत्तम भाग्य वश मिला है और यदि यह शरीर इसी प्रकार बिना भगवत् भजन के नष्ट होगया, तो बड़ी हानी हुई समझो, क्योंकि यह निश्चय नहीं है कि फिर मनुष्य ही शरीर मिलेगा, संभव है कोई अन्य योनी प्राप्त होवे, जिसमें भगवत् प्राप्ति के लिये साधन करने का अवकाश न मिले, इस लिये स्वाद को छोड़ कर, ईश्वराधन ही कर्तव्य है और जैसे,कैसे आनंद पूर्वक देह निर्वाह कर लेना चाहिये॥

यह सुन कर सब महात्मा लोग, धैर्य युक्त और प्रसन्नता पूर्वक जय जय शब्द करते हुए,अपनी अपनी कुटियाओंकी ओर चले गये, और जब क्षेत्र वालों को अपनी भूल का पता लगा, तब उन्होंने भी

अन्न को अच्छी रीति से शोधन कराना आरम्भ कर दिया, जिस से भिक्षुकों को अन्न पवित्र और शुद्ध मिलने लगा ॥

सामयिक उपदेश ।

श्री महाराज गृहस्थादिकों को यथोचित उपदेश किया करते थे, यदि कोई कर्म का अधिकारी होता था तो शुभकर्म परायणताका उपदेश करतेथे, यदि कोईवैराग संपन्न तथा ज्ञान का पात्र होता था, तो उसको क्षमादि साधनों में स्थापन करके प्रथम वेदान्त के प्रक्रिया के ग्रंथों को पढाते थे ॥ विशेपतः व्युत्पत्ति के लिये वेदान्त के अधिकारियों को पँचदशी उपदेश साहस्री. आदिक ग्रंथों का श्रवण कराते थे,गीता उपनिषद् पढ़ाते थे तथा ब्रहम निष्ठा संपादन कराने के लिये, मुमुत्तु वर्ग को जीवन्मुक्ति विवेक वा पातंज़ल योग दर्शन व्यास भाष्य पढाते थे ॥

वे श्रद्धालु मुमुंक्षु वर्ग में, आश्रम की श्रेष्ठता की न्युनाधिकता पर ध्यान नहीं देते थे, न उन को किसी भेष का पक्षपात था, किन्तु सच्चे विरक्त जिज्ञासू पर, सदैव उनकी करुणा द्रष्टि वनी रहती थी श्री महाराज उनको अत्यन्त दया की भरी हुई तिर्छी निगाहों से देखा करते थे, उनके रोगों की ओर भी द्रष्टि रहती थी और यथा संभव सहायता देते थे ॥ उन मुमुत्तु वर्ग के साथ श्री महाराज दो पहर पीछे, एक मील दूर पहाड़ी नालों के पत्थरों में और खड्डों में ले जाकर और पृथिवी पर बैठ कर शिष्य वर्ग को चारों ओर बिठा कर, ब्रह्मोपदेश किया करते थे ॥ वे वेदांत के गुह्य रहस्यों को सहज

में ऐसी रीति से समझा देते थे, कि उनको विना पढा हुआ आदमी भी समझ जाता था ॥ एक अपठित विरक्त ब्रह्मचारी था, जिसको "फुहारा" ब्रह्मचारी कहते थे ॥ वह यह समझता था कि एक ही परमात्मा सब रूप है, सब ओर से परिपूर्ण है इस लिये अज्ञानी को भी अन्तः करण की वृत्ति अज्ञानतः सदा ब्रह्माकार ही रहती हैं क्यों कि सब परमात्मा हैं. उससे इतर अनात्मा कुछ होवे तो कोई अनात्मा को जाने, इस लिये वह कहा करता था कि सर्वत्र आनंद ही आनंद है सब नानात्व. अज्ञानी से कुछ भी समझा जावे, परन्तु आनंद के फुहारे उड़ रहे हैं ॥

सबकी वृत्ति ब्रह्माकार + ना समझे कर्मों की मार।
है वृत्ति ब्रह्माकार जरूर + ना समझे तो तेरा कसूर ॥

इसी निष्ठा में उस अपठित निरक्षर महात्मा ने विरक्त रह कर ब्रह्म निष्ठा पूर्वक, कलेवर छोड़ दिया ॥ यह श्री महाराज के उपदेश की ही महिमा थी ॥

भक्त गुरुदास हकीम ने उदर शूल से पीड़ित होते हुए भी, धैर्य पूर्वक एकादशी को, गङ्गा स्नान करके, ब्रह्म निष्ठा पूर्वक, श्री महाराज की कुटिया में ही दो घण्टे में, कलेवर छोड़े दिया। यह महाराज के उपदेश की ही महिमा थी ॥

श्री महाराज ने लगभग सत्तार वर्ष की आयुष में देह छोड़ा परन्तु उनकी आयुष काल में कितने सहस्र स्त्री पुरुष ज्ञान निष्ठा को प्राप्त हुये होंगे। यह अनुमान नहीं हो सकता। अब भी, सिंध पंजाब, मारवाड़ संयुक्त प्रदेश उत्तरा खण्ड, काशी आदिक में, अनगणित जनता उनका आदर सत्कार और उन पर श्रद्धा भाव रखती थी ॥ लेखक ने स्वयं हजारों की तादाद में यात्रियों को हृषीकेश में, नित्य प्रति उनकी कुटिया के आगे बैठे हुए और प्रातःकाल से दो पहर तक तथा मध्यान्हकाल से सायंकाल तक घेरे हुए देखा है

श्री स्वामी जी बालपन से त्याग वैराग की मूर्ति और महा तपस्वी थे। दिन दिन भर और कई कई दिन बिना भोजन किये उन्हें हो जाते थे। अपना शारीरिक दुःख किसी से कहना नहीं चाहते थे। रोग को सहज में सहन करते थे। और जब अस्मदादिक उनकी शारीरिक कुशलता अथवा रोग के विषय में वृतान्त पूछते थे तो वेकहते थे कि हमको देहका स्मरण मत कराओ, विस्मरण रहने दो क्यों कि स्मरण से ही दुःख होता है॥ दीर्घ काल, एकान्त सेवी, वैरागवान रहते हुए जब दैवयोग से,उनकी लोक संग्रहार्थ प्रवृत्ति हुई तो बहु समुदाय के विक्षेप को सहन करने से उनको बहुत पीड़ा हुई जिससे उनके हृदय में धड़कन उत्पन्न हो गई और विशेषतः हृदय रोग रहने लगा, जो अन्त समय उनके देहावसान में निमित्त कारण हुआ॥

वे गृहस्थों को उपदेश किया करते थे कि भाई, जिस प्रकार कूप में से जल लेने के लिये, डोरी लोटा उस कूप में डालते हैं। सब डोरी कूप में चली जाती है, एक हाथ भर डोरी पानी भरने वाले के हाथ में रहती है, यदि वह एक हाथ डोरी हाथ से छूट जावे, तो लोटा, डोरी सहित, कूप में चला जाता है, और मनुष्य जल से वंचित रह जाता है, और सदा के लिये लोटा डोरी खो बैठता है। परन्तु यदि डोरी पकड़े रहे तो जल मिल जाता है। इस ही प्रकार इस मनुष्य ने अनेक जन्म, व्यर्थ संसार कूप में खो दिये, केवल यह मनुष्य देह इसके वश में है यदि यह देह भी बिना मोक्ष साधन संपादन किये हुये, इस के हाथ से निकल गया, तो फिर मनुष्य जन्म मिलने की आशा नहीं है। इस के सब पूर्व जन्म व्यर्थ चले गये परन्तु यदि यह शरीर, इसने पुरुषार्थ में लगाया, तो इसकेसब पूर्व जन्मोंके शरीर सफल हो जाते हैं, और यह मोक्ष का भागी हो कर आप भी तृप्त होता है और अन्यों की भी तृप्ति करता है॥ इस

लिये इस मनुष्य शरीर को व्यर्थ ही न खोना चाहिये ॥ इसी जन्म में शुभ कर्म से, अन्तः करण शुद्ध करना चाहिने, और योग तथा ज्ञान को सम्पादन करके अपना और दूसरों का भी कल्याण करना उचित है ॥

यदि कोई श्रीमान् वा धनाड्य पुरुष गुजारे की शिकायत करता था, तो उस को थोड़ा खरच करने का स्वभाव डालने का उपदेश किया करते थे ॥ श्री महाराज सद् गृहस्थों को कहा करते थे, कि देखो, भाई, रोटी को लोग इस लिये चूल्हे में अग्नि पर सेंकते हैं, कि यह पक जायगी तो हमारा और कुटुम्ब का देह निर्वाह होगा परन्तु सेकी जाने के पश्चात्, यदि रोटी को सेका जावे, तो क्या होगा, रोटी जल जावेगी, और न तुम्हारे काम आवेगी न दूसरे के काम आवेगी, जिस प्रकार यह दृष्टान्त है, इसी प्रकार दार्ष्टान्तिक समझ लो कि द्रव्य इस लिये उपार्जन किया जाता हैं जिससे तुम्हारा और कुटुम्बादिक सब का निर्वाह हो जावे, परन्तु जब निर्वाह योग्य द्रव्योपार्जन हो जाता है, और अधिक द्रव्य के संग्रह की अथवा विशेष भोग संपादन की तृष्णा होती है, तब यह अधिक तृष्णालू हो जाने से, कामी क्रोधी लोभी होकर अनेक पापों का संग्रह करता है, अनेक प्रकारकी चिन्ताओं से ग्रस्त होता है, अनेक अपमान और हानियों को सहन करता है, तथा चिन्ता ही चिन्ता में काल का ग्रास होकर नरक का पात्र होता है ॥ इसके जीते जी इसके सम्बन्धी जलते हैं, कि यह दुष्ट मर जावे तो इसका द्रव्य हमारे हाथ आवे और हम सुखी हों ॥ कहाँ तक कहा जावे उपद्रव ही उपद्रव होते हैं । इस लिये उचित है कि धर्म पूर्वक धन उपार्जन करो थोड़े में निर्वाह करो, कुटुम्बका पालन करो, सारा आहार ईश्वर को अर्पण करके खाओ, समय बचा कर ईश्वर का आराधन करो कथा वार्ता सुनो, योग ध्यान संपादन करो, महात्माओं का

सत्संग करो और अपना तथा सम्बन्धियों का कल्याण करो, यही रोटी सेंक कर खानो है, अन्यथा रोटी जल जायगी, न तुम खा सकोगे न दूसरा खा सकेगा। पाठक वृन्द विचारें कि सद् गृहस्थों के लिये, तृष्णा निवृत्ति पूर्वक धर्म से द्रव्य का उपार्जन कर के सहज निर्वाहार्थ, यह कैसा कल्याण दायक उपदेश है॥

हृषीकेश में बहुत से साधु वर्ग का आग्रह विशेषतः अपनी २ संप्रदाय की वृद्धि के लिये भेष की बड़ाई को प्रकट करके जिज्ञासु का शिर मूंडने में देखा गया है, परन्तु श्री स्वामी जी महाराज का किसी भी सम्प्रदाय में विशेषाग्रह नहीं था॥

एक समय लेखक ने श्री महाराज से सन्यास आश्रम के विषयमें कर्तव्य को पूछा. श्री महाराज ने कहा कि विचारो तुम्हारा कल्याण अध्यास की निवृत्ति से होगा, अथवा अध्यास की वृद्धि से होगा। यदि तुम सन्यासाश्रम को स्वीकार करोगे, तो उस आश्रम के नियमों का पालन करना भी तो सीखोगे, यह नया अध्यास ग्रहण करना होगा। यदि कहो कि वेदान्त विचार द्वारा अध्यास निवृत्ति करेंगे तो तुम वेदांत विचार अब भी कर ही रहे हो, यहीं देहाभ्यास की निवृत्ति क्यों नहीं करते ?॥

लेखक अधूरे परमहंसों का बहकाया हुवा था, और यह इसको सुझा दिया गया था कि विना सन्यासाश्रन स्वीकार किये, न वेदांत श्रवणका अधिकार है न बोध होता है न उसका फल मोक्ष होता है, लेखक विचार करते २ सब भ्रम से निवृत्त हो गया, क्यों कि यह जान लिया गया कि सन्यास आश्रम का स्वीकार भी एक प्रकार के क्रिया के अभ्यास को निवृत्त करके दूसरे प्रकार की क्रिया का अध्यास स्वीकार करना है, वह ज्ञान के अन्तर्गत नहीं है, कर्म के अन्तर्गत है। ज्ञान से ही सम्पूर्ण अध्यास की निवृत्ति होती हैं चाहे वह किसी आश्रम में हो, और विना अध्यासकी निवृत्ति के सन्यासी

को भी मोक्ष नहीं होती है, यह नियम है इस लिये, जैसे बने वैसे, वेदांत विचार से अध्यासकी समूल ही अत्यन्त निवृत्ति, निश्चय करनी चाहिये ॥ जिसको विना सन्यासाश्रम स्वीकार किये वेदांत श्रवण मनन निदिध्यासन न प्राप्त हो सके, वह अवश्य संया-साश्रम स्वीकार करे, क्यों कि उस को तब ही विचार प्राप्त होगा ॥

तात्पर्य श्री महाराज के उपदेश का यही था कि जहां कहीं जिज्ञा-सू की स्थिति हो, वहां ही वेदांत विचार द्वारा मूल अज्ञानके सहित देह जगत के अध्यास की निवृत्ति ही जाननी चाहिये ॥ श्री महाराज ऐसे दयालू थे कि जब यह व्यक्ति श्री कैलाशाश्रम से उपनिषद् श्रवण करके आया करता था, और मार्ग में वह कहीं मिल जाते थे तो मार्ग में, चलते२ संपूर्ण कैलाश के पढ़े हुए उपनिषद् पाठ को, अपने कण्ठस्थ शङ्कर भाष्य के सहित अच्छी प्रकार से हृदयमें आरूढ़ करा देते थे और यदि कोई शङ्का आकर उपस्थित होती थी तो उसका समाधान करदेते थे ॥

एक समय इस व्यक्ति ने श्री महाराज से पूछा, कि हे भगवन्! श्रीमद्भगवद्गीता में, जो श्री भगवान् ने सन्यासका उपदेश किया है, वहां संन्यास से श्री भगवान का क्या कथन का अभिप्राय है क्या आश्रम रूप संयास अभिप्राय है, अथवा कुछअन्य है ॥ श्री स्वामी जी नें उत्तर दिया कि गीता में तो, काम्यकर्म के त्याग को ही संयास कहा है, और ऐसा ही संयास श्री भगवान को इष्ट था, वहां और किसी प्रकार के आश्रम रूप संयास का प्रसंग नहीं है ॥ आश्रम रूप संयास में अर्थ लगाना खींचातानी मात्र है ॥

वर्षा ऋतु थी, एक दिवस थोड़ी २ वर्षा की बूंदें पड रही थी, सायंकाल का समय था, यह शरीर श्री महाराज के साथ उन पर छतरी लगाये हुए था, वाहरसे वे घूमते हुए आये थे, मुनिकी रेतीमें कुटिया को जाते हुए मार्ग में इस व्यक्ति को मिल गये थे, अब

हम दोनों गोशाला से उनकी कुटिया की ओर चले॥ मार्ग में उनसे वेदांत विचार सम्बन्धी विचार करते चले जाते थे। इस व्यक्ति ने, अवसर पाकर प्रार्थना की, कि कृपा करके वेदांत के प्रस्थान त्रय यानी गीता उपनिषद् और वेदांत सूत्र शंकर भाष्य सहित साङ्गोपांग पढा दीजिये॥ कार्य बहुत बडा था, श्री महाराज ने उस समय तो अच्छा कह दिया, परंतु आगे चल कर मूर्छित होकर गिरने लगे। इस व्यक्ति ने, बडी कठिनाई से उनके शरीर को अपनी भुजाओं में पकड कर संभाला। वे एक जल के बहते हुये स्रोत के पास बैठ गये और उन्होंने हाथ मुंह धोया। उसके पश्चात् वे उठे और लेखक ने उनके मूर्छित होने का कारण पूछा॥

उन्होंने कहा कि हमने तुझ को पढ़ाने के लिये जो प्रस्थान त्रय के विस्तार का विचार किया तो मूर्छा आ गई॥ लेखक ने कहा कि महाराज? मैंने आगे को सदा के लिये इस आग्रह का त्याग करदिया आप को मूर्छा न होवे॥ इस प्रकार श्री महाराज ने शास्त्र वासना का परित्याग कराया॥

एक दिन जब यह व्यक्ति पातंजल योग दर्शन व्यास भाष्य के सहित, उनसे अध्ययन किया करता था तो श्री महाराज ने खिन्न होकर कहा कि तू हम को अपने पढ़ाने के लिये व्यर्थ खेद पहुंचाता है॥ कुछ तो अन्य लोग कार्य वश श्रम पहुंचाते हैं, परंतु तू भी दुःख देने को तय्यार रहता है॥ इस कथन से लेखक को बहुत दुःख हुवा और प्रतिज्ञा की, कि जैसे कैसे इस ग्रंथ को समाप्त करके, फिर कुछ किसी से अध्ययन न करूंगा॥

अगले दिन इस सेवक ने उनसे प्रार्थना की कि आप ग्रंथ के मूल भाग की व्याख्या कर दीजिये, उस से ही पूर्ण बोध होजाता है, क्यों कि भाष्य का संपूर्ण भाव आप स्वयं ही ऊपर से कथन कर देते हैं, शेष भाष्य का आप ही अर्थ लग जाता है॥ इस प्रकार व्यास

पर उनका महान अनुग्रह हुवा।

बन विहार।

श्री स्वामी जी इस व्यक्ति को अपने साथ सोलह सोलह मील, दिन प्रति दिन, जंगलों में घुमा कर लाया करते थे॥ मार्ग में, बनों उपवनों में घूमते थे जलाशयों के समीप बैठते थे, बनों में पराचीन शिवालयों में शङ्कर भगवान के दर्शन करते थे, रुपिये अथवा रसायन वनाने वाले जनों के गुप्त स्थानों और उनके बनाये हुये अग्नि कुण्डों को देखते थे॥

हैमन्त ॠतु में वे शिष्यों के सहित धूप में बैठ कर कहीं ब्रह्म विचार करते थे, बेत के कण्ठक वृक्षों से पूर्ण बनों में घुस कर वस्त्रों को सुलझाते हुए, आंख कान बचाते हुए छाया छाया में वनों को लांघते चले जाते थे। कहीं २ दल दल में पांव धस जाने पर सहज में पांव निकाल कर फिर चलते थे, हंसी खुशी की बातें करते जाते थे, श्रुतियों के अर्थों पर विचार करते जाते थे, अपने पूर्वकाल के अनुभूत चरित्रों को सुना कर प्रसन्न होते थे, वन से बाहर निकल कर पहाड़ी घराट पर पनचक्की से आटा पिसता हुआ देखा करते थे, श्री गङ्गाजी के परले पार वनके हाथियों को स्नान करते अथवा रेत धूल उड़ाते देखा करते थे। और घूमते घूमते गोशाला की गऊओं को जाकर घेर लेते थे, तथा उन को चराने लगते थे अथवा इकट्ठी करके गोशाला की ओर हांकदेते थे॥

ग्रीष्म ॠतु में भी दोपहर के पीछे इसी प्रकार बाहर जाते थे

मार्ग में किसी मदोन्मत्त साधू को देखते स्थित प्रज्ञ के लक्षणों का विचार करते थे, और उनको धूर्त्ततासे पृथक करके विवेचन करते थे ॥ जब श्रम से थक जाते थे, तो पुष्पित कण्टकदार करोंदेके वृक्ष की सघन छाया में लेट जाते थे और बन के पुष्पों की सुगन्धी से, प्रसन्न चित्त होजाते थे ॥ टेसू (किंशुक) के निर्गन्ध पुष्पों के गुच्छे हाथ में लेते थे और श्री महाराज उन पर काव्य रचना सुनाते थे॥

ज्वर चढने पर भी उनके पास यही औषधी थी कि अन्न भोजन का परित्याग कर देते थे और भ्रमणार्थ वन को निकल पड़ते थे जिससे पसीना आकर ज्वर उतर जाता था। रास्ते में पाडल की सूखी फली शिर के साफे में रख लेते थे कि इससे शिर दर्द को आराम होता है ॥ इस प्रकार दीर्घ काल श्री महाराज के सत्संग में द्वादश वर्ष तक काल आनन्द पूर्वक व्यतीत हुआ ॥

एक समय भेद वादी का खण्डन किसी प्रसंग से इस व्यक्ति ने प्रतिवादी के अपमान पूर्वक किया। तब इस प्रकार श्री महाराज ने कहाः——

"न गुणान् गुणिनो हन्ति स्तौति मन्द गुणानपि।
नान्य दोषेषु रमते साऽनसूया प्रकीर्तिता ॥"

अर्थ यह है.—गुणी पुरुषों के गुणों का जो अपघात न करना और थोडे गुणों की भी स्तुति करना है वह असूया का अभाव कहलाता है यानी दूसरों के गुणों का अनादर करना और दोष दर्शन करना असूया है ॥ इस लिये किसी में भी असूया न करना चाहिये ॥

स्वयं श्री महाराज वैष्णवों में वैष्णव हो कर रहते थे और शैवों में शैव, तथा शाक्तों में शाक्त होकर माननीय थे ॥ वे योगियों में योगी थे, वेदान्तियों में वेदान्ती, सन्यासियों में सन्यासी और

ब्रह्मनिष्ठा में सर्व विशेषणों से विनिर्मुक्त थे ॥ किसी ने उन को कभी किसी की निन्दा करते नहीं देखा होगा ॥

वे अस्मदादिकों को मार्ग में चलते हुए वेदान्त की शिक्षा दिया करते थे, इसमें एक यह उदाहरण है कि एक दिन सायंकाल को बाहर भ्रमणार्थ जब कुटिया से जंगल की ओर जा रहे थे तो दूर से तरबूज का छिलका पड़ा हुआ दिखाई दिया। उन्होंने इस सेवक से पूछा कि यह क्या है, वह रूप में श्वेत था इस लिये इसने उस को किसी मुर्दे की खोपड़ी बतलाई। उन्होंने कहा यह तुम्हारा भ्रम है समीप चल कर परीक्षा करो। देखने से तरबूज का छिलका दिखाई दिया। उन्होंने इस दृष्टान्त के आधार पर यह दार्ष्टान्तिक समझाया कि जिस प्रकार अविचार से मन्द अन्धकार में यह ज्ञात होता था कि कुछ पड़ा है परन्तु विशेषतः ठीक ज्ञात नहीं होता था, उसमें खोपरी का सा भ्रम हुआ था और जिज्ञासा यह विचारने की हुई कि वह क्या है। यह वस्तु सामान्य से ज्ञात थी कि कुछ है परन्तु विशेष से अज्ञात थी इसी लिये जिज्ञासा की विषय हुई क्या कि न अत्यन्त ज्ञात में ही जिज्ञासा होती है न अज्ञात में ही परन्तुसामान्य से ज्ञात और विशेष से अज्ञात में ही जिज्ञासा होती है और वही अज्ञान भ्रम सन्देहका विषय होता है। पीछे देखने से अज्ञान सहित भ्रम सन्देह निवृत्त होकर जाना गया कि तरबूज का छिलका है ।

इसी प्रकार यह जो दृष्ट आ रहा है सम्पूर्ण दृश्य, वह सामान्य से इदन्ता, सतरूप से ज्ञात, और विशेषतः ब्रह्म रूप से अज्ञात है, यही अज्ञान भ्रम सन्देह का विषय है और ज्ञान के प्रमाण के तथा विचार के आधीन है। सामान्य सतरूप से ज्ञात हुआ २ भी अद्वैत अखण्ड आनन्द स्वरूप ब्रह्मज्ञान विचार से होगा और तब ही जिज्ञासा की निवृत्ति होगी ॥

श्री स्वामी जी जिस दृष्टि से पुरुषों को देखते थे उसी दृष्टि से स्त्री वर्ग को देखते थे। उनकी दृष्टि में जो उनकी शरण में जाता था वह उनका शिशु था। यदि कोई जिज्ञासु स्त्री, स्वय ज्योति आत्मा को, पूछती थी तो वे वह वृहदारण्यक उपनिषद् के ज्योति ब्राह्मण का मन्त्रों सहित सम्पूर्ण अर्थ कण्ठ से सुना देते थे॥ यदि कोई मुमुक्षु पूछता था कि एक सतके ज्ञानसे सम्पूर्ण विश्वका ज्ञान कैसे हो सकता है तो छान्दोग्य उपनिषद् का सम्पूर्ण छठा अध्याय अर्थ सहित सुना कर समझा देते थे॥ वे कहा करते थे कि जिसको अज्ञान है उसी को ज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति करने का अधिकार है क्योंकि ब्रह्म को ही अज्ञान हुआ और उसी ने सर्वात्म भाव से अपने अज्ञान की निवृत्ति की, यह वृहदारण्यक उपनिषद् के प्रथम अध्याय में निरूपण है॥

परमात्मा, स्त्री पुरुष ब्राह्मण शूद्र कुछ नहीं देखता है वह तो भक्ति जिज्ञासा को ही देखता है॥ऐसा वह कहा करते थे।

वीर भद्र की यात्रा।

सम्वत् १९७० विक्रमी फालगुनके मासमें शिवरात्रीको वीर भद्र का मेला था॥ हर साल नियम से ऐसा ही होता है कि प्रायः सर्व नर नारी वाल वृद्ध तथा साधू महात्मा जो हृषीकेश में या आस पास निवास करते हैं श्री गङ्गा जी का स्नान करने के लिए नगरसे तीन मील की दूरी पर जहां श्री गङ्गा जी और सुसुवा नदी का

संगम है, वहां स्नान करने जाते हैं। स्नान करने के पश्चात् श्री वीर भद्र महादेव पर जल चढ़ाते हैं पूजन करते है तथा उपवास करते हैं॥

उस साल यह व्यक्ति श्री महाराज के साथ साथ ही वीर भद्र को गया। प्रातः काल का समय था घास पर छोटी छोटी बूंदें पड़ी शोभा दे रहीं थीं। आगे आगे श्री महाराज थे पीछे पीछे यह व्यक्ति तथा अन्य साधु वर्ग थे। बात चीत होते हुए साधु जनों के कोठी बङ्गले बनाने पर चर्चा चल पड़ी कि विरक्त होते हुए भी देखा देखी बड़े २ आश्रम बनाने की प्रथा चल पड़ी है, जिससे कुछ काल पीछे कुप्रथा फैल जाने पर, आश्रमों का दुरुपयोग होने लगता है। बात बात में गो रक्षा का प्रसंग चल गया और सन्यासियों के धर्म का प्रसङ्ग चल गया, प्रश्न हुआ कि वेदान्त का अध्ययन अध्यापन छोड़ कर गो पालन सन्यासी का मुख्य धर्म है या नहीं। श्री महाराज स्वयं गोशाला का निरीक्षण करते थे उन को यह विचार हुआ कि हमारे ऊपर आक्षेप किया है, तब यह श्लोक उन्होंने पढ कर सुनाया--

यथा यथा मां विकृतिं करोति तथा तथा मां प्रतिबोधयंति।
यथा यथा माँ प्रति बोधयंति, तथा तथा जात विचक्षणोऽहं॥

अर्थ यह हैं कि:--जैसे २ मुझ में विकार बतलाते हैं, वैसे २ मुझ को समझदार बनाते है और जैसे २ मुझे बोधित करते हैं वैसा वैसा ही मैं ज्ञानी पण्डित होता जाता हूं॥"

यह बात इस व्यक्ति के हृदय में खटक गई और तुरन्त इसने प्रार्थना की कि आप पर, सेवक को आक्षेप करने का क्या अधिकार हो सकता है॥ यह साधारण प्रसंग था, आप क्षमा करें, इस पर उन्होंने हंस कर क्षमा प्रदान की और कहा कि हम अप्रसन्न नहीं हैं

तुरन्त क्षमा करना उनका सहज स्वभाव था, हां ! जो कोई साधु महात्मा भी दुराग्रह करता था. उसको युक्ति प्रमाण से ऐसा निरुत्तर करते थे कि वह लज्जित हो जाता था ॥

मार्ग चलते हुए एक बूटी का प्रसंग चला, तब लेखक ने तुरन्त पृथ्वी से उखाड़ कर उनको दिखला दी। श्रीमहाराज अप्रसन्न होने लगे कि तू ने व्यर्थ उसको उखाड़ दिया. यदि कोई तेरे रोम उखाड़ देता तो तू कैसे स्वीकार करता? यह सुन कर क्षमा मांगने पर और कहने पर कि भूल हो गई आगे को ऐसा नहीं करूगा, तुरन्त क्षमा प्रदान होगई अप्रसन्नता जाती रही ॥

श्री गङ्गा जी में संगम तट पर स्नान सन्ध्या कर चुकने के पीछ यह व्यक्ति श्री स्वामी जी तथा अन्य साधू वर्ग रेती में बैठ गये। श्री महाराज पर सब की श्रद्धा आस्था थी ही, एक साधु ने प्रश्न किया कि महाराज कृपा करके यह बतलाइये कि साधु को द्रव्य ग्रहण का अधिकार है या नहीं। यह कथन करने पर श्री महाराज बोले:——

साधु शब्द का अर्थ निर्दोष है और उसका सर्वत्र प्रयोग हो सकता है, परन्तु समय के प्रभाव से आज कल साधु शब्द का भिक्षुकों में ही व्यवहार किया जाता है, मानो साधु शब्द भिक्ष अर्थ में ही कैद होता है। जिस प्रकार उदासीन शब्द का अर्थ असङ्ग है निर्मल शब्द का अर्थ मल रहित शुद्ध है परन्तु वे शब्द गुरु नानक देव की सम्प्रदाय में साधु वर्गमें कैद हो गये हैं तथा वैरागी शब्द वैष्णवों में कैद हो गया, तद्वत् सन्यासी शब्द दश नामी सन्यासी वर्ग में कैद हो चुका है। इसी प्रकार साधु शब्द भिक्षुकों के लिये कैद हो चुका है, यदि आज कल साधु शब्द शास्त्रीय आज्ञा के अनुसार वर्ता जा रहा हो तो (इस लेखक की ओर इशारा करके कहा कि) सीताराम का यज्ञोपवीत

कैसे उतारोगे बतलाओ ! जिस शास्त्र की आज्ञा से और विशेष विधि विधान से यज्ञोपवीत धारण किया जाता है, उसी प्रकार विधि विधान के अनुसार यह उतारा जा सकता है अन्यथा नहीं हो सकता ॥

विशेषतः साधू वर्ग अवैदिक रीति से भिक्षुक बने हुए थे, इस लिये उनमें अप्रसन्नता पूर्वक हल चल मच गई, क्योंकि उन्होंने समझा कि हमारी सम्पूर्ण सम्प्रदायों का इन्होंने खन्डन करके हमारा अपमान किया। इस प्रकार सब आपत्ति करने लगे और कहने लगे कि अपने भक्त शिष्य को सामने सिखला कर बिठला दिया है॥ यह सुन कर यह लेखक बोला कि यह व्यक्ति तो अन्य परमहंस महात्मा का शिष्य हैं, आप व्यर्थ आक्षेप न करें। इस भोले कथन पर सब हंस पड़े कि भक्त सन्यासी होने से डर गया ॥ इस बात के पीछे उन साधु वर्ग में से, एक साधू ने यह व्यङ्ग आक्षेप श्री महाराज पर किया कि:--

तब आप के नाथ सम्प्रदाय पर क्या विचार रहा। इस पर श्री महाराज ने निर्भीकता पूर्वक उत्तर दिया कि हम नाथ तोड कर ही बैठे हुए हैं तब तो हमने इतना सत्य कथन किया, जो आप लोगों को अप्रिय लगा। इस पर सब उठ कर चल दिये ॥ इस प्रसङ्ग से उस दिन श्री महाराच ने जो इस व्यक्ति की सन्यासाश्रम पर अन्ध परोक्षता से पूर्ण श्रद्धा थी, उसका विच्छेद करके, आश्रम परिवर्तन के भ्रम से निवृत्त कर दिया और साधू होने पर भी जो भ्रम नहीं छूटता तथा उद्दण्ड चेष्टा रहती है, वह दृश्य स्पष्ट दिखला दिया ॥

देखने से यह ज्ञात हो गया कि उन लोगों में से अधिकांश साधू वर्गको श्रवण भी प्राप्त नहीं होता, तब मनन निदिध्यासन तो

बहुत दूर रहे, और वास्तविक ब्रह्म निष्ठा तो अत्यन्त ही दुर्लभ है, इस लिए दृढ़ चित्त होकर श्रवण मनन निदिध्यासन ही कर्तव्य है अन्य नहीं ॥

प्रथम दर्शन ।

पूज्यपाद श्री मंगल नाथ जी की महिमा तो महात्माओं द्वारा लेखक पहले ही से सुन चुका था परन्तु सम्वत १९६८ के शीत काल के आरम्भ में यह व्यक्ति उनके दर्शन की लालसा से ही हृषीकेश पहुंचा ॥ प्रातःकाल गङ्गा स्नान करके कुछ वस्त्रादिक भेंट लेकर यह व्यक्ति उनकी कुटिया पर पहुंचा। श्री महाराज कहीं बाहर थे अन्य साधू वहां आते जाते थे । उन दिनों गोशाला के उत्सव की नई नई चर्चा बड़े उत्साह के साथ थी। श्री महाराज आये और इस व्यक्ति ने प्रणाम किया, फिर वह कुटिया में चले गये। यह व्यक्ति भी पीछे २ गया और दण्डवत् प्रणाम करके वस्त्रादिक भेंट किये। और भी गृहस्थ साधू दर्शन करने अन्दर पहुंच गये। महाराज को गोशाला के विषय में साधु वर्ग से बातें करनी थी इस लिये आज्ञा हुई कि दर्शन हो चुके, सब चले जाओ यह व्यक्ति निराश हो कर पश्चाताप करता हुआ उदास चित्त होकर चला आया ॥ फिर सायंकाल को जाकर कुटिया के बाहर से ही पुकारा कि "महाराज मैं इतनी दूर से जिज्ञासा पूर्वक आया हूं और आप से वार्तालाप करने का अवसर नहीं मिलता है

कृपया इसका अवकाश दीजिये"। तव श्री महाराज मंद हास्य पूर्वक अहातेकी बाहर की दीवार पर बैठगये और लेखक बाहर खड़ा बातें करता रहा ॥ लाहौर से आये हुए भी दो सज्जन दीवार से नीचे श्री महाराज के चरणों में बैठ गये तव यह बातें हुईं : —

प्रश्नः—हे भगवन् यह जो पंचदशी में कहा है:—

"स्मरणादनुमीयन्ते व्युत्थितस्य समुत्थितात्"

यहां समाधी से व्युत्थित पुरुष को जो आनन्द के स्मरण से समाधी काल का अनुमान होना प्रकाशित किया है, उसमें शङ्का है कि वह समाधी वाला, आनन्द, ब्रह्मानन्द है अथवा आत्मानन्द है अथवा विषयानन्द है ।

उत्तरः—यावत् आनन्द है ब्रह्मानन्द है परन्तु समाधी ही इष्ट है तथा पथ्य है ।

प्रश्नः—एक दो बार समाधी होने के पश्चात् फिर वह अवस्था हमारी इच्छा से हमें क्यों प्राप्त नहीं होती है।

उत्तरः—ऐसा ही हुआ करता है अभ्यास में लगे रहो।

प्रश्नः—क्या फिर भी समाधी को करते रहने की आवश्यकता है।

उत्तरः—समाधी अवश्य होनी चाहिये क्योंकि समाधी विना किसी को भी इस प्रकार नहीं सरता है जैसे कि निद्रा विना किसी का निर्वाह नहीं हो सकता है,(समाधी से श्री महाराज का ब्रह्मभाव से प्रयोजन था) ॥

प्रश्नः—तो क्या विद्वान् पाषाणवत् जड़ हो जाता है ?

उत्तरः—हां (पाषाण नहीं) किन्तु पाषाणवत् तो कहा ही है।

प्रश्नः—शास्त्र में तो "यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः" ऐसा कथन किया है।

उत्तरः—ऐसे ही सही, परन्तु समाधी अवश्य होनी चाहिये।

प्रश्नः—महाराज ! "अणोरणीयान् महतो महीयान्" इस श्रुति का क्या अर्थ है कृपया निरूपण कीजिये ॥

उत्तरः—अणु अदृश्य है, परन्तु योगियों के दृष्टि गोचर होता है। परमात्मा अणु से भी अणु है, योगियों की भी दृष्टि का अविषय है ॥

(शङ्काः—श्रुति में "द्रष्टव्य" कहा है यदि योगियों से द्रष्टव्य न हो तो श्रुति को व्यर्थता आती है।

समाधानः—हमारे कहने का प्रयोजन यह है कि परमात्मा आत्म गोचर वृत्ति का विषय है नेत्रों का विषय नहीं है इस लिये दुर्विज्ञेय है यह तात्पर्य है, क्योंकि श्रुति ने भी कहा है कि "दृश्यते त्वग्रय्या बुद्धया" अर्थात् एकाग्र बुद्धि से तो साक्षात्कार होता है ॥)

यह "अणोरणीयान्" का अर्थ कहा अब "महतो महीयात्" का अर्थ सुनो।

महान जो अकाश है, परमात्मा उसका भी अधिष्टाता हैं, इस लिये महान से भी महान है ॥ "निहितो गुहायाँ" इस श्रुति द्वारा उसको बुद्धि का साक्षी बतलाया। इस लिये उसको समाधी में ही लखाने का तात्पर्य नहीं है, किन्तु वह ज्ञान से लखा जाता है।

प्रश्नः—"दृश्यो नास्तीतिबोधेन..........परानिर्वाण निवृ त्ति" इस श्लोक में भी बोध से परानिर्वाण आनन्द प्राप्ति को लखाया है।

उत्तरः—यही नास्तिकता उत्तम है इसी का अभ्यास करो।

प्रश्नः—यह अभ्यास कब तक करना होगा ?

उत्तरः—जब तक चिन्मात्र वासना का भी परित्याग न हो तब तक अभ्यास करना होगा ॥

इतनी बातें होकर अन्धेरा हो गया श्री महाराज ने आज्ञा दी कि नगर को चले जाओ-यह लेखक उनको प्रणाम करके निवास स्थान पर चला आया और ऐसे अपूर्व सन्तोष का अनुभव किया जिसका अब तक भी स्मरण है ॥

अगले दिन प्रातःकाल फिर यह लेखक तथा एक और महात्मा साथ साथ श्री रामाश्रमको देखते हुए नाव पर गङ्गा पार गये और वहाँ से स्वर्गाश्रम होकर महात्माओं का दर्शन करते हुए फिर श्री महाराज की कुटिया पर आये तो ज्ञात हुआ कि वहसामने श्री गङ्गा जी के किनारे पत्थरों में बैठे हुए हैं और कुछ यात्री गण भी बैठे हुए हैं ॥ यह व्यक्ति भी वहां जाकर प्रणाम करके बैठने लगा, श्री महाराज ने मुस्कराकर प्रणाम को स्वीकार कर लिया और बैठने का इशारा किया तब यह बातें कीं:—

श्री महाराजः—कहां गये थे ?

उत्तरः—हे भगवन् हम श्री गङ्गा जी के पार गये थे ?

महाराजः—और जहां बैठे हैं यह क्या हैं ।

उत्तरः—महाराज यह भी पार ही है ?

तब श्री महाराज ने हंस कर कहा किः—

'वार दृष्टि से पार है, पार दृष्टि से वार ।
पकड़ किनारा बैठ रह, यही वार यहि पार ॥"

(तात्पर्य यह कि भटकना छोड़ कर सन्तोष पूर्वक "सर्व ब्रह्म है" इस भाव में ही स्थित रहना उचित है) ॥ फिर यह उपदेश किया कि "थोड़े में निर्वाह करो, थोड़ा खाओ, थोड़ा व्यवहार करो, कीड़े मत पैदा करो, यही तुम को खायेंगे । यही प्रयत्न करो कि कब रात दिन समाधिस्थ रहेंगे कब बन्धन छूटेगा ?" अब बता क्या करेगा ?

उत्तर. – महाराज यहीं करूंगा।

श्री महाराजः—"अच्छा तेरी मरजी" यह सुनकर सव चले आये॥

यह श्री महाराज के प्रारम्भिक दर्शनों का और सत्संग के लाभ का तथा करुणामय दृष्टि के प्रपात का "श्री गणेशायनमः" था॥ पीछे जीवन्मुक्ति विवेक का तथा गीता योग दर्शन और उपनिषदों का उनसे श्रवण किया, जव जव अवकाश मिलता, यही तार सम्वत् १९६८ से अव तक चलता रहा। अव वह वात ही नहीं रही सम्वत् १९८५ विक्रमी गुरु पूजा से अगले दिन ब्रह्म लीन श्रीमहाराजने मानोस्वेच्छासे शरीर छोड़ दिया॥ प्रातःकाल ५ वजे उठकर श्री गङ्गा जी की ओर देख कर वोले कि वूंदें पड़ रही हैं फिर लेट रहे। दो चार ऊर्ध्व श्वास लिये और कलेवर छोड़ दिया॥ एक समय श्रीमहाराज वर्षा ऋतुमें भी दोपहरके पीछे श्रीगङ्गाजीके किनारे वसु धारा पर नियम से प्रतिदिन आया करते थे॥ उनदिनों एक पहाड़ी नदी चन्द्र भागा चढ़ी रहती थी॥ उसका वेग ऐस था कि घुटने तक भी जल रहते हुए कोई विरल अभ्यासी हो पार जासकते थे।

यह व्यक्ति नियम से दर्शनार्थ जाया करता था। उस दिन नदी में जल अधिक था परन्तु एक सतसङ्गी मित्र श्री गोकुलचन्दजी के साथ यह व्यक्ति भी पार गया। श्री महाराज दूर से वैठे हुए चन्द्रेश्वर महादेव के मन्दिर की छत के नीचे दिखाई दिये। हम भी वहीं जा वैठे वर्षा मूसला धार हो रही थी। श्री महाराज हंस कर एक पंजावी कहावत हीर रांझी की कहने लगे।

कि जव हीर की सहेली स्त्रियों ने उपहास से वनावटी जोगी कहा तव जोगी वेष धारी राँझा ने कहा थाः—"मेएहां दे नालनहीं जोग जान्दा। नहां गलदियां संगल नाल फुहारयां दे"॥

तात्पर्य यह कि कैसी ही रुकावटें क्यों न उपस्थित हों सच्चे प्रेमियों का प्रेम अनिवार्य होता है ॥ अब न चन्द्रेश्वर महादेव का स्थान है, न झाड़ी हैं, न वह रेत और यह गङ्गा तट है न गोशाला है, न उनमें से बहुत से महात्मा सत्सङ्गी हैं क्योंकि पीछे श्री गङ्गाजी की बाढ़के कारण सब वे बह गये और श्रीमहाराज का भी शरीर अब न रहा "सब स्मृति पथ पर चलेगये हम भी क्षण भरमें इसी प्रकार चले जायेंगे ॥ जो वृतान्त श्री महाराज का इस व्यक्ति के साथ इन १८ वर्षों के भीतर हुआ जो उपदेश मिले तथा स्मरण रह सके, वे सब पाठकों की सेवा में पुस्तकार में एक बार श्री वेदान्त रसबिन्दु में निरूपण कर चुका हूं। अब जो १४उपदेश शेष रह गये थे तथा श्री महाराजके ३६ पत्र उनसबको एकत्र करके यथामति आपकी सेवामें दूसरी पुस्तक "श्री मङ्गलोपदेशरसायन" के आकारमें निवेदन कररहा हूं ॥ यह इस सेवक के श्रद्धा पूर्ण आंसू हैं, ऐसा समझ कर स्वीकार कीजिये। शीघ्रता में और अधैर्य पूर्वक लेख लिखा गया है, त्रुटियों को क्षमा कीजिये और पढ कर अथवा सुन कर सारग्राही दृष्टि से स्वच्छ प्रेम रस का आनन्द लीजिये ॥ श्री महाराज इस व्यक्ति पर अत्यन्त कृपा दृष्टि रखते थे अन्य सत्संगी कहा करते थे कि तुम को श्री स्वामी जी अध्ययन भी कराते हैं और लौकिक कार्यों में नहीं प्रवृत्त कराते इसका क्या कारण है ?।

लेखक यह निवेदन कर देताथा कि यह व्यक्ति इस योग्य नहीं है परन्तु उनकी कृपा ही बहुत है और वह अनिवार्य है ॥ श्री महाराज कभी कभी भाव की परीक्षा कर बैठते थे। एक दिन उन्होंने अपने ऊपर आरोप करके हंसते हुये कहा कि वृद्धावस्थामें तृष्णा अधिक बढ जाती है. तुरन्त लेखक ने प्रार्थना की कि महाराज! तृष्णा उन गृहस्थों की बढती है जिन्होंने आयुष पर्यन्त तृष्णा की वृद्धी

का अभ्यास किया है, जिन्होंने त्याग वैराग का ही आयुष पर्यन्त अभ्यास किया है उनमें त्याग वैराग बढता है तृष्णा कैसे बढ़ेगी आप ऐसा न कहें, यह सुन कर श्री महाराज हंस कर मौन होगये । इसी लिये यह सब उनकी करुणा का प्रपात होता रहा ॥

पूर्व जीवन वृतान्त ।

श्री महाराज का कब संसार में अवतार हुआ यह ज्ञात नहीं है। उनका मारवाड़ बीकानेर प्रान्त का शरीर था । परन्तु उनका कब जन्म हुआ इस बात का पता लगना कठिन नहीं है और आशा है मारवाड़ी भक्त जनों ने इस बात का पता लगा लिया होगा । यह बात लेखक स्वयं उनसे पूछ सकता था परन्तु सन्यास उपनिषद् में यति के पूर्व वृतान्त को उससे पूछने का निषेध है इस लिये पूछने का साहस न हो सका ।

उनका गुरुद्वारा रत्नगढ था उनका एक भक्त कहता था कि महाराज वहां चल कर उसको संभालिये वहां कोई नहीं रहा परन्तु उन्होंने उपेक्षा की दृष्टि से कुछ उत्तर नहीं दिया ॥

उनके सद्गुरुदेव का नाम श्री मुक्ति नाथ जी था । यह उत्तर काशी में बड़े विरक्त महात्मा प्रसिद्ध हो चुके हैं ॥ आरम्भ काल में अन्तः करण की शुद्धि के लिये इन्होंने श्री कलिसन्तरण उपनिषद् के "हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे २" इस मन्त्र का द्वादश वर्ष पर्यन्त रात दिन जप कर के साढे तीन क्रोड़ जप पूरा किया था ॥

श्री महाराज मङ्गल नाथ जी ने बालपने से गुरुद्वारे में रह कर बुद्धि की तीक्ष्णता दिखलाई थी और विद्या अध्ययन शीघ्र ही किया जहां २ जिस २ गुरु से एक बार अध्ययन कर लिया आयुष पर्यन्त उनके स्मरण रहा ॥ श्री महाभारत का नील कण्ठी टीका सहित उन्होंने एक मास में हो, उत्तर काशी में रहते हुए सांगोपाङ्ग अवलोकन कर लिया था। कूछ वेदान्त उन्होंने श्री धनराजगिरिजी महाराज से हृषीकेश में पढ़ा था। कुछ विद्या काव्य व्याकरणादि पूर्व काशी में रह कर अध्ययन किया था ॥ जब अध्ययन काल में हृषीकेश थे तब बडे तितिक्षु थे वे प्रायः निराहार रह जाते थे किंचित खिचड़ी खाते थे, अल्प वस्त्र धारण करते थे और लोगों से छिपे छिपे एकान्त में पडे रहते थे। यह चरित्र लेखक ने कितने ही पुराने साधु जनों से स्वयं सुना है और स्वयं उनका स्वभाव साथ वर्त कर देखा है ॥

श्री स्वामी जी को व्याकरण में सिद्धान्त कौमुदी, शेखरमनोरमा व्याकरण भाष्यादिक कण्ठस्थ थे ॥ वे संस्कृत काव्य के बडे विद्वान् थे और स्वयं कवि थे। वेदान्त में वीर विजय तथा विचार विन्दु यह दो श्लोक वद्ध निबन्ध उन्होंने लिख कर साधु वर्ग को पढाये हैं। लेखक ने भी श्रवण किये हैं। वेदान्त में विद्वानों को भाष्य लगाने में, जिस पङ्क्ति में भूल हो जाती थी उसको पूछने के लिये उनकी कुटिया पर आते और पूछते हुए लेखक ने देखा है। गुण ग्राही दण्डी स्वामियों को उनके चरणोंमेंमस्तक टेकते लेखकने देखा है और कई को उनसे स्पर्धा करते भी देखा है ॥

वे बड़े गुरु भक्त थे। जब दर्शन की लालसा होती थी तब पूर्व काशी से पैदल पर्यटन करते हुये मारवाड़ में जाकर दर्शन किया करते थे ॥

वे लम्बे ऊंचे पुरुष थे और उनकी भुजायें बहुत लम्बी थीं जिन को देख कर श्रीमद् भगवद्गीता में कहा हुआ "महा बाहो" शब्द चरितार्थ होता था॥

एक समय जब वह पूर्व काशी में अध्ययन किया करते थे, पाण्डु रोग ने तथा उदर रोग ने यहां तक पीड़ा पहुंचाई कि उनको हरद्वार जाने की इच्छा हुई॥ किसी भक्त ने रास्ते के आहार के लिये एक सेर पिस्ता और किशमिश साथ रखदी॥ उन्होंने मार्ग में रेल में जाते हुए ही सब मेवा एक साथ ही खाली॥ शाहजहांपुर रास्ते में पड़ता था वहां एक सन्त से उनको मिलना था॥ स्टेशन पर उतर गये शौच जाने की आवश्यकता हुई। इतना मल और जलका पतन हुआ जो एक घड़े के तुल्य हो। इसी से उनके सम्पूर्ण रोग निवृत्त हो गये। पीछे हरद्वार होकर हृषीकेश आगये और निवास करके साधु वर्ग को वेदान्त का अध्ययन कराने लगे॥

श्री महाराज और झाडी के साधु लोग वर्षा ऋतु में कनखल निवास किया करते थे। एक समय उष्णता के कारण मूत्रस्थलमें जलन हो गई। श्री चैतन्यदेव की कुटिया में किसी डाक्टर ने औषधि देदी जिससे हानि पहुंच कर अधिक पीड़ा हुई पीप जाने लगी। श्री महाराज ने आप ही दूधमेंजल मिला कर तीन चार बार पियाऔर रोगको अच्छा कर लिया पीछे डाक्टर को सूचित किया और उसकी औषधि लौटा दी॥ कई साधु महात्माओं ने न श्रवण करने योग्य मिथ्या अभियोग भी उन पर आरोप कर दिये जिनको सुन कर आस्तिक श्रद्धालु जनों को खेद हुआ॥

श्री महाराज एक समय हिसारके एक नगर भिवानीमें भिक्षाटन कर रहे थे कि किसी वल्लभ कुल के गुसाईं ने ईर्ष्या के वश हो कर उनके प्रति अपशब्द प्रहार किये। परन्तु उन्होंने उनको सहजमें

ही सहन कर लिया। इसका उस पुरुष पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह लज्जित हो कर चरणों में गिर पड़ा और क्षमा की प्रार्थना करने लगा।

एक समय वह जीवन्मुक्ति विवेक का पाठ पढ़ाया करते थे, उस में यह श्लोक है॥

"येनकेन छिद्राछन्ना येन केन चिदाशितः"

अर्थात् ब्रह्म वित यति जिस किसी वस्त्र से शरीर ढक लिया करते हैं और जैसा मिले (सन्तोष पूर्वक) भोजन कर लेते हैं॥ यह कह कर श्री महाराज ने कहा कि जब हम मारवाड़ के ग्रामोंके वनों में विचरते थे तो एक सायंकाल को देखा कि एक महात्मा किसी स्त्री का बड़ा भारी लहंगा गले में पहन कर विचरते थे। उनके पास अन्य कोई वस्त्र न था, शीत काल था। पूछने पर उन महात्मा ने कहा कि हम को किसी के उपहास करलेने से क्या हानी है एक माई ने अपना घाघरा दे दिया उसी को पहन कर अपना शीत निवारण कर लिया। साधू को लोक वासना से रहित होकर वे परवाह रहना चाहिये और व्यर्थ की अनुचित लोक लज्जा का परित्याग करना चाहिये॥

श्री महाराज योगियों के दंभ और सिद्धियों के प्रदर्शन का बड़ा रोचक उपहास किया करते थे परन्तु सच्चे सन्यासी जो निष्काम मुमुक्षु होते थे उनका उचित आदर करते थे। एक दिन विना बुझे हुए चूने के पत्थरों पर पानी छिड़क कर उन को ठंडा किया जा रहा था उस समय उस चूने में अग्नि लग रही थी। उन्होंने कहा कि इस गर्म चूने को उठाओ इस व्यक्ति ने कहा कि यह जल रहा है, उन्होंने एक गर्म डली हाथ में उठाली और कहा यह देखो सिद्धाई की वात! फिर बहुत हंसे॥ पञ्चम शष्ठी आदिक भूमिका चढाने वाले ज्ञानियों के दांभिक आग्रह का निरूपण करते हुये, वे

कहा करते थे कि कई जन हठ पूर्वक अकर्म प्रदर्शन करते हैं जो दंभ रूप कर्म ही है। ऐसे एक प्रसिद्ध पुरुष का प्रसङ्ग आने पर उन्होंने कहा कि आसन लगा कर चुप बैठे हुए जिद से उस महात्मा की जंघा पर किसी दुष्ट ने आग का अङ्गारा रख दिया, परन्तु उसने इतना हठ किया कि खाल तो जलने लगी पर आसन नहीं डिगाया। एक अन्य महात्मा, ऐसी ही अनुचित हठ पूर्वक चेष्टा से पागल फिरते हुए देखे गये. यह सब हानियाँ शास्त्रके रहस्यको न समझ कर, अनुचित अनुष्ठान से होती हैं ॥

वे कहा करतेथेकि ज्ञान तथा भक्ति समाधी इत्यादिकरोग नहींहैं किन्तु ईश्वरानुग्रह है ॥ जो महात्मा अथवा गृहस्थ पुरुष अथवास्त्री अनाचार दुराचार अथवा अत्याचार परायण होते थे, परन्तुदंभा चरण पूर्वक सदाचार दिखा कर जनता को ठगते थे उनकोवे लज्जित करते थे इसी लिये वे बड़े २ मठ धारी महन्तो और लोभी अपढित गृहस्थों तथा पठित श्रीमानों के हृदय में खटका करते थे॥ कितने ही साधु लोगों को श्री स्वामी जी के प्रतिपक्षियोसे मिलकर हलवा पूरी दूध वस्त्र औषध आदिक विना परिश्रम केवल बातें वनाने से अथवा पिशुनता से मिल जाया करते थे, इस लिये वे साधु गण, श्री महाराज की शासना में से निकल कर प्रतिपक्षियों में जा मिला करते थे। अत्यन्त खेद की बात है कि साधु वर्ग में गृहस्थों से अधिक उद्दण्डता और दुराचार देखने में आरहा है॥ हृषिकेश में नैपाल देश अथवा अन्यत्र से आई हुई सायनी स्त्रियां भी वहुत हैं, परन्तु इस जनता के सुधार की ओर न राजा का ध्यान है न प्रजा का ॥ पांच वर्ष हुए पिछली श्री गङ्गाजीको वाढ आई थी, जिसमें झाढी वभ्रगई थी इससे वहुत अधिक पहले जो श्री गङ्गा जी की वाढ आई तब श्री महाराज हृषीकेश में थे ॥ श्री महाराज के मित्र और समान वयस्क महात्मावर्ग में से, श्री ईश्वर सिंह जी निर्मल. श्री केशवानन्दजी

उदासीन, श्री तपस्वी जी, श्री वीरमदासजी, इत्यादिक महात्माथे पुराने कोई कोई साधु जन अब भी इस विरक्त मिश्र मण्डलों की वातें सुनाया करते हैं ॥

उसके पीछे वे काशीमें पढ़े थे, जब काशी जी से पढकर वापिस आचुके और ऋषीकेश निवास करने लगे तब प्रातःकाल से सायंकाल पर्यन्त साधु महात्माओं को शास्त्र पढाया सुनाया करते थे उस समय गृहस्थों को उनका दर्शन करना भी दुर्लभ हो जाया करता था ॥ जब वे जङ्गलमें चले जाते थे तो जनता की भीड़ उनको जङ्गल में ढूंढ कर साथ ले आती थी और सत्सङ्ग का लाभ उठाती थी। प्रायः जितने माननीय साधु सम्प्रदाय में आचार्य बने हुए अब अध्ययन करा रहे हैं, वे स्वयं अथवा गुरु वा दादा गुरु कोई न कोई अवश्य उनसे अध्ययन कर चुके हैं अथवा उनके सतसङ्ग का लाभ उठा चुके हैं चाहे वह पीछे स्पर्धा असूयादिक दोषों के वशीभूत होकर प्रतिपक्षी वन गये हों। वे बड़े शुचिवान थे उनको मलिन आचार आहार आदिक से बहुत ग्लानि हो जाती थी। एक समय वे काशमीर देशमें अमरनाथजी की यात्राके लिये रवाना हुए हरीपुर हजारा में पहुंच कर वहां उन्होंने एक यवन को चर्म पात्र में दुग्ध लाते देखा। उससे उनको इतनी अरुचि हुई कि वमन होना आरम्भ होगया। उसी का पुनः पुनः ध्यान आता था और वमन होता था किसी औषध से लाभ न होने पर श्री महाराज ने कहा कि हम वहती धारा से गङ्गा जल पान करके अच्छे होजायेंगे। तब वे हरद्वार लाये गये और गङ्गा जल पान करके शीघ्र अच्छे हो गये ॥

ब्रह्मलीन श्री१०८ स्वामी रामतीर्थजी महाराज श्री १०८ पूज्यपाद श्री मङ्गलनाथ जी महाराज पर वहुत श्रद्धा रखते थे। सन् १९०४ ईस्वी में श्री गङ्गा जीको तैर कर पार करते हुए पारके किनारे के

कटे हुये एक त्रिकोण में, फंसा हुआ उनका शव मिला था । उस त्रिकोण में मस्तक फ़ंसने पर श्री स्वामी राम तीर्थ जी का देहावसान हो गया था। तब श्री स्वामी मङ्गलनाथ जी उत्तर काशी प्रान्तमें ही थे। उन्होंने स्वयं शव के खोजमें प्रयत्न कराया था और शव के जल प्रवाह संस्कार में सम्मिलित थे॥ यह बात श्री महाराज ने स्वयं सुनाई थी॥

श्री महाराज के अपने प्रिय सेवकों को विशुद्ध आत्म निष्ठा प्रदान कराने में कितना उत्साह था, यह बात उनके कृपा पूर्ण पत्रों के अवलोकन करने से पाठक गणों को विदित हो जायगी । उनका उपहास कितना मीठा और शिक्षा प्रद था और लिखने की शैली कैसी स्नेह से पूर्ण थी यह बात उनके उपदेश पूर्ण पत्रों के पढने से ज्ञात हो जावेगी॥ यह लेख न तो श्री महाराज का यथा विधि जीवन चरित्र ही है और न क्रमशः घटनाओं का उल्लेख ही है किन्तु उनकी बातें याद करके रोना है अथवा स्यापा है। इस लिये पाठक गण अवश्य त्रुटियों को क्षमा करें यह पुनः पुनः लेखक का अनुरोध है।

श्री महाराज ने लगभग अन्त के २७ वर्ष से लौकिक उन्नति के लिये प्रयत्न करना आरम्भ किया था और वहुत से समाज सुधार के कामों को उन्होंने चलाया पञ्जाव सिंध क्षेत्र में तथा साधु पाठ शाला में मारवाडी पंचायती क्षेत्रमें अन्य पाठ शालाओंमे धर्म रक्षण तीर्थ सुधार दान धर्म रक्षिणी सभा साधु सभा हिन्दुसभा आदिक वहुत से कार्यों में उनका सहयोग था, परन्तु लेखकको उन कार्यों का विशेष विवर्ण ज्ञान नहीं है॥

इत्योम् (श्रावण वदी पञ्चमी १९८५ वि० कांधला, आपका
सीताराम

॥ ॐ तत्सत् श्रीमङ्गल मूर्त्तये नमः ॥

द्वितीय परिच्छेद ।

प्रश्नोत्तर रसमालिका (२)

प्रश्नः—हे भगवन्, यह सब जगदाडम्बर क्या है और इसके निरूपण के लिये भिन्न भिन्न वाद की कल्पना कैसे हुई, तथा मुख्य सिद्धान्त क्या है, सो कृपा करके कथन कीजिये ॥

उत्तरः—यह जो नाम रूपात्मक ज्ञान है, सो सब अज्ञानके मध्य में है और क्योंकि अज्ञान का कार्य है, इस लिये अज्ञान रूप ही है, तथा सब ओर, अज्ञान से ही आच्छादित है ॥ जो घट का ज्ञान है, पट का ज्ञान है, शब्दादिक का ज्ञान है; सो सब ही अज्ञान रूप है ॥ इसमें यह दृष्टान्त है:—

जिस प्रकार कि निद्रा और उसके अन्तर्गत सब कुछ कल्पना स्वप्न रूप है, स्वप्न में स्वप्नान्तर भ्रम होता जा रहा है, परन्तु स्वप्न वाली निद्रासे पृथक कुछ नहीं है,इसी प्रकार अज्ञानका कार्य सब घटादिक प्रपञ्च का ज्ञान, अज्ञान के ही अन्तर्गत है ॥ यदि विचार पूर्वक चिन्तन किया जाये तो अज्ञान को ज्ञान से नाश होजाने से वह अज्ञान स्वयं कुछ नहीं है, केवल अद्वितीय अखण्ड विज्ञान ही परिपूर्ण है ॥ कल्पित होने से अज्ञान की कोई पृथक सत्ता नहीं है ॥ अज्ञान और उसका सब कार्य विना किसी कारण के, विना हुए ही; माना जा रहा है, सो कहीं ठहर नहीं सकता है और इसी लिये, अब भी नहीं है और कभी रहा भी नहीं (है ॥ "यन्नास्ति तत्त ना-

स्त्येव" अर्थात् जो नहीं है वह तो है ही नहीं ॥ जिसने कल नहीं रहना है वह आज ही क्यों सत्य मान लिया जाये, और व्यवहार तो सब इसी अज्ञान के अन्तर्गत है, इस लिये सब कुछ "नासीदस्ति भविष्यति" यानी. न था, न है, न होगा" इसी निश्चय के अनुसार मानना चाहिये ॥ अज्ञान और उसके कार्य को मिथ्या कहना भी मानो उसको स्थिर रखना हैं, इस लिये एक अखण्ड बोध स्वरूप केवल, घन जाग्रत ही समझना चाहिये ॥

बुद्धि के अनुसार नास्तिकों के अणुवाद की कल्पना हुई फिर द्वयणुक वाद की कल्पना हुई ॥ पीछे परिणाम वाद की कल्पना हुई। शुद्ध बुद्धि होने पर ज्ञान के लिये विवर्तवाद स्थापित हुआ; परन्तु यावत् कार्य की कल्पना है विना कारणके ही है और सब असत् है, केवल अजात ब्रह्म अपना स्वरूप ही अनन्त अखण्ड सत्ता रूप है, इसलिये मुख्य सिद्धान्त अजात वाद ही मानने योग्य है॥ इत्योम्

(२) प्रश्नः—हे भगवन् ! अपरोक्ष ज्ञान के पश्चात् विद्वान को आत्मा की सदा स्मृति रहती है, अथवा नहीं, और आत्मा का अनुमान प्रमाण से जन्य विज्ञान, हो सकता है, या नहीं, सो कृपा करके कहिये ॥

उत्तर;—स्मरण कर्ता की स्मृति नहीं हो सकती है और अनुमाता की अनुमिति नहीं हो सकती है, क्योंकि स्मरण कर्ता का तथा अनुमान कर्ता का अपना आपा यानी आत्मा स्वयं अपरोक्ष है, और स्मृति परोक्ष की होती है, अपरोक्ष की नहीं ॥ इस लियेआत्मा का स्मरण अथवा अनुमान नहीं किया जा सकता है, किन्तु अपरोक्ष ज्ञान ही होता है और जो ज्ञान से पीछे स्मृति मानी जाती है, वह बोध की पुनरावृत्ति है आत्मा की स्मृति नही है ॥ यह बोध की पुनरावृत्ति ही ब्रह्माकार वृत्तिका प्रवाह कहलाता है, जो ब्रह्म निष्ठा में उपयोगी साधन है, परन्तु आत्मा का धर्म नहीं। अन्तः करण

का धर्म है और अनित्य है। अपने आपको सवस्मरण अनुमान आदिक अन्तः करण के धर्मों से रहित नित्य सत्य जानना. यही अद्वैतावस्थान है ॥ इत्योम् ॥

(३)प्रश्नः—"यच्छेद्वाङ्मनसि प्राज्ञः······"इस श्रुति में "यच्छ" शब्द से श्रुति के उपदेश का क्या तात्पर्य हैः—

उत्तरः—यहाँ "यच्छ" शब्द का अर्थ है पूर्व पूर्व व्यापार की उपरामता पूर्वक उत्तर २ व्यापार को शेष रखना, यानी वागादिक इन्द्रियों के, व्यापार का निरोध करके केवल मन का, सङ्कल्पात्मक व्यापार शेष रखना, फिर मनके सङ्कल्पात्मक व्यापार के निरोध का अभ्यास करके विशेष अहङ्कार मात्र ज्ञानात्मा को शेष रखना फिर उसका निरोध करके सूक्ष्म अहङ्कार रूप महान आत्मा को शेष रखना, अन्त में महानात्मा यानी सामान्य अहङ्कार को भी शान्तात्मा में निरोध करना ॥

(४) प्रश्नः—एतरेय उपनिषद् में, जाग्रदादिक तीनों अवस्थायें स्वप्न रूप क्यों कही हैं ?

उत्तरः—आत्म दृष्टि से तीनों अवस्था जाग्रत स्वप्न तथा सुषुप्ति, सब विपर्य्य रूप यानी मिथ्या है, इस लिये स्वप्न ही है यह तात्पपर्य्य है ॥ ॐ

(५) प्रश्नः—हे भगवन् "सर्वं भूतेषु चात्मानं सर्वं भूतानि चात्मनि+ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शिनः ॥" इस श्लोक में श्री भगवान् ने सर्व भूतों का और उनमें एक ही आत्माका दर्शन करना, तथा एक आत्मामें सर्व दर्शन करना, यह समदर्शी योगी का लक्षण कहा इससे ज्ञात होता है कि भूत और आत्मा दो वस्तु हैं । तव अद्वैत दृष्टि कहां हुई '। कृपा करके इस शङ्का का समाधान कीजिये ॥

उत्तरः—इस श्लोक में, श्री भगवान् ने अज्ञों के हृदय में जो

भूतों की दृष्टि है, उसका अनुवाद करके सर्व भूतों से विनिर्मुक्त आत्मा का ही दोनों स्थलों में उपदेश किया है ॥

श्लोक का अर्थ यह है:—जो पुरुष सर्व भूतों में, (भूतों का बाध करके, यानी उन भूतों को स्वप्न के नरोंवत् अत्यन्त असत् समझ कर) अधिष्ठान सत्ता मात्र आत्मा को देखता है। (क्यो कि भूतों की अपनी सत्ता कोई नहीं है) और आत्मा में सर्व भूतों का बाधित देखता है। (यानी केवल अखण्ड आत्मा ही है भूत कुछ नहीं है ऐसा देखता है) सो योग युक्तात्मा है, सर्वत्र समदर्शी है यानी ब्रह्मदर्शी है ॥ इस प्रसङ्ग में विद्वान भूतों को नहीं देख सकता है, क्यों कि भूतों वाली दृष्टि तो अज्ञ जनों की दृष्टि है ॥

जैसे कि "राम रावणयोर्युद्धं राम रावणयोरिव" अर्थात् राम रावण का युद्ध राम रावण युद्धके सदृश ही है। इस वाक्य में कुछ दूसरा उपमान कथन इष्ट नहीं है केवल एक अनुपमेय युद्ध के लखाने का ही तात्पर्य्य है, इसी प्रकार पूर्वोक्त गीता के श्लोक में केवल एक आत्मा के लखाने का ही तात्पर्य है, भूतों को लखाने का नहीं ॥

(६) प्रश्नः—हे भगवन् कृपा करके यह कथन कीजिये कि देहाभिमान की निवृत्ति किस विचार से की जावे ॥

उत्तरः—यह देह अपनी उत्पत्ति से पूर्व नहीं था, बीच में जब इस देह का आरम्भ होने लगा तब माता पिता के खाये हुए अन्न रस का विकार रूप मिश्रित रज तथा वीर्य का आकार मात्र था, पीछे बढ़ते बढ़ते अब तोल में दो मन, का हो गया। और मृत्यु के पीछे फिर यह नहीं रहेगा ॥ इससे ज्ञात हुआ कि बीच ही बीच में बुलबुले की न्याईं अथवा मरु भूमि में मृगतृष्णा के जल की न्याईं प्रतीत होता हुआ भी, यह देह वस्तुतः अविद्यमान ही है, यह समझ लेना उचित है ॥

आदि में अन्न रूप से, यह देह इदम् रूप था। अन्न खाने के पीछे वही अन्न, देहोऽहं हो गया। मल शेष में भी, इदन्ता बुद्धि होती है, वही तो यह देह है॥

सामान्य रूप से, सब के देह एक जैसे ही हैं, परन्तु उन सब में इसकी, इदं बुद्धि ही होती है, कभी भी अहं बुद्धि नहीं होती है॥ उन सब में से इस एक स्वव्यक्तिमें, इसकी अहं बुद्धि होती है,उसमें ही, यह देहोऽहं बुद्धि को रखता है। यह देह में अहं बुद्धि, इसकी विषम बुद्धि है वही इसको त्यागना उचित है॥ सब देहों में अहं बुद्धि होना तो, इसके लिये असम्भव है, परन्तु इस देह में से भी इसको अहं बुद्धि निकाल देना उचित है तथा अन्य देहों में ही, इस देह को भी मिला कर सब को इदं रूप समझ कर (यानी अज्ञा न काल का अध्यास, बीच में प्रतीति मात्र जान कर)उस इदन्ताका बाध, यानी सम्यक् मिथ्यात्व निश्चय कर लेना चाहिये॥

जिस प्रकार भ्रम से इस देह में आत्मत्व अभिमान होता है, इसी प्रकार प्रत्यक् साक्षि कूटस्थ चैतन्य गत सत्यता भी इसने देह में ही समझ रक्खी है जिससे आप को प्रथम देह मान करके फिर आत्मा की सत्ता का देह में आरोप करके यह अज्ञ, देह को ही "मैं हूं" ऐसे समझता है और उसको नित्य समझता है, तदनन्तर देह के धर्म जो जन्म मरण कर्तृत्व भोक्तृत्व भूख प्यास, हर्ष शोक,उनको प्रत्यक् चैतन्य कूटस्थ निज आत्मा में मान कर अपने आपको कर्ता भोक्ता, जन्मता, मरता, सुखी दुखी, भूखा प्यासा, इत्यादिक मान ता है, सो यह इसका अन्योन्याध्यास विचार से निवारण होने योग्य है॥

प्रत्यक् चैतन्य देह जगत वाला नहीं, किन्तु अद्वैत पूर्ण एक सत्ता स्वरूप है, देह जगत रूप इदन्ता सत्य नहीं किन्तु उसके अत्यन्ता भाव पूर्वक अनिदम् ब्रह्म सत्य है, यह विचार करके एक अखण्ड

अनन्त केवल ब्रह्म ही समझ कर देहाभिमान निवृत्त हो जाता है.

(७) प्रश्नः—श्री वाल्मीकीय महारामायण में, श्री वशिष्ठ जी ने श्री रामजी को यह उपदेश किया हैः—

"दृष्ट्वारम्यमरम्यं वा स्थेयं पाषाणवत् समम् । एतावदात्म यत्नेन जिता भवति संसृतिः" ॥ इस श्लोक का क्या भावार्थ है ?

उत्तरः—इस श्लोक का यह अर्थ है किः—रम्य अथवा अरम्यको देख कर पाषाणवत् सम स्थित रहना चाहिये इतने ही अपने पुरुषार्थ से संसार का विजय होता है ॥ यहां रम्यता और अरम्यता दोनों भाव, आविद्यक हैं । इन दोनों को मिथ्या निश्चय करके इन का बाध करके यानीं अत्यन्त असत् समझकर ही पाषाणवत् समता आसकती है, और इस पुरुषार्थ से ही संसृति पर विजय होता है, यानी सम ब्रह्म भाव पूर्वक ज्ञान से संसार का अत्यन्ता भाव होता है । यह तात्पर्य्य है ॥

जिस प्रकार सूर्य को धूप और वर्षा की ठंड में भी पड़े हुये पाषाण की पाषाणता अटल है, पाषाण का स्वत्व, यानी आत्मता कहीं नहीं जा सकती है, इसी प्रकार रम्यता अरम्यता रूप दृश्य से विनिर्मुक्त आत्म सत्ता, सदा विद्यमान है उसका स्वत्व यानी स्वयं प्रकाश अपना आपा ज्यूं का त्यूं है । ऐसा असङ्ग स्व स्वरूप, सर्वदा काल समझना चाहिये ॥

अन्य द्वैत का सदा सैं अभाव होने से यह आत्मा सदा स्वरूप से असङ्ग है ॥ बाह्य व्यवहार की दृष्टि से भी सदा असंसर्ग रहना योग्य है, तथा असंसक्त रहना चाहिये । ऐसा न करोगे, तो व्यवहार में असावधान रहने से अहं मम दृश्य अवश्य चिपट कर दुख देगा ॥ जिस प्रकार रेल गाडी का दृष्टा, यदि गाडी को पकड़े तो उसके साथ खिंचा चला जाता है, और दुःख पाता है, परन्तु दृष्टा मात्र को, असङ्ग होनेसे कुछ दुःख नहीं है, इसी प्रकार सब व्यवहार

में भी असङ्ग यानी संसर्ग तथा आसक्ति से रहित होकर अपने आप को दृष्टा मात्र जान कर अन्य भेद दर्शन से रहित होकर स्थित रहने से सदा आनन्द ही आनन्द है ॥ जैसे स्वप्न दृश्य, दृष्टा के स्वरूप से इतर नहीं है, इसी प्रकार दृष्टा से इतर संसार दृश्य कुछ नहीं है, इस लिये इसकी असङ्गता अन्य का अभाव होने से, स्वरूप भूत ही निश्चय करने के योग्य है, कर्त्तव्य कुछ नहीं है ॥ इत्योम्

(८) प्रश्नः—हे भगवन् जो सुख अनुभव में आता है वह तो सोपाधिक और अनात्मा है, परन्तु आत्मा को सुख स्वरूप सुना है। यह आत्मा का स्वरूप भूत सुख अन्य सुखों की न्याईं कुछ अनुभव में नहीं आता है, इस लिये उसको कैसे समझना चाहिये।

उत्तरः—प्राणी मात्र सुख की इच्छा से प्रयत्न करता है और दुःख पाता है ॥ सर्व विषय सुख दुःख रूप है आत्मा सुख स्वरूप है। जो जो सुख अनुभव में आता है चाहे वह विषय जन्य हो अथवा समाधी जन्य हो, क्षणिक यानी अनित्य होने से आत्म स्वरूप सुख नहीं है। जो अनुभव में आया हुआ सुख, आत्मा का स्वरूप माना जावे तो मानो आत्मा सुख के आधीन है, सुख से नीचे है, यानी सुख से दबा हुआ है और सुख आत्मा के ऊपर है, आत्मा से ऊंचा है। परन्तु यह बात सिद्धान्त के विरुद्ध है, इस लिये इष्ट नहीं है क्योंकि आत्म सुख, विषय सुख की न्याईं सापेक्ष और सातिशय नहीं है, किन्तु निर्पेक्ष निरतिशय और स्वरूप भूत है ॥ इस लिये जो जो सुख इच्छा का विषय है और अनुभव का विषय है, वह सोपाधिक है, अनात्मा दृश्य रूप है और दुःख रूप है किन्तु सुख की इच्छा न होना ही आनन्द स्वरूप आत्मा स्वयं निर्दुःख सुख स्वरूप हैं ॥ श्री अष्टावक्र मुनि ने कहा हैः——

'आयासात् सकलो दुःखी नैनं जानाति कश्चन ।
अनेनैवोपदेशेन धन्यः प्राप्नोति निर्वृतिम् ॥"

इसका अर्थ यह है:—सब लोग सुख की इच्छा से इस लोक तथा परलोक के वास्ते नाना प्रकार का परिश्रम करते हैं और दुःख पाते हैं. परन्तु सुख कहां है ,कहीं भी नहीं है। सुख की इच्छा को त्यागने से ही सुख स्वरूप आत्मा अपना आप उपलब्ध होता है, परन्तु इस बात को कोई भी अज्ञ पुरुष जानता ही नहीं, । "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इस ही उपदेश से "मैं ब्रह्म हूं अब्रह्म कुछ नहीं है" ऐसा निश्चय कर के "धन्य" अर्थात् कृतकृत्य हुआ हुआ सर्व दुःखों की निवृत्ति रूप परमानन्द स्वरूप अपने आत्मा के साक्षात्कार को प्राप्त होता है॥

(९) प्रश्न:– हे भगवन् समाधी क्या होती है और सहजावस्था किस को कहते हैं, कृपा करके निरूपण कीजिये॥

उत्तर:—समाधी दो प्रकार की होती है,(१) एक क्रिया समाधी होती है और (२) दूसरी ज्ञेय समाधी होती है॥ (१) प्रथम जो क्रिया समाधी है सो मन और इन्द्रियों की एकाग्रता आदिक सामग्री के आधीन होती है और उत्थान को प्राप्त होती रहती है वह अज्ञान का कार्य है और अज्ञान के अन्तर्गत हैं, उत्थान में समाधी की भावना मात्र हैं॥

(२) दूसरी जो ज्ञेय समाधी है, इसी को 'तत्वादप्रच्युतो भवेत्" अर्थात् तत्व से चलायमान न हो, इस श्री माण्डूक्य उपनिशद् की गौड पादीय कारिका के भाष्य में पूज्यपाद श्री शङ्कराचार्य ने निरूपण किया है:— "जिस प्रकार कोई पुरुष चित्त को, आत्मा स्वरूप समझता हुआ चित्त के चलायमान होने पर, आत्मा को चलायमान मानता हुआ, कदाचित् देहादि रूप आत्मा को तत्व से चलायमान मानता है कि "मैं अब तत्व से प्रच्युत हो गया हूं" और कदाचित् मन के समाहित होने पर आत्मा को, तत्वी भूत

और प्रसन्न मानता है कि "मैं अव तत्वो भूत हूं". यानी स्वरूप में स्थित हुआ हूं, इस प्रकार आत्मवेत्ता पुरुष न होवे ॥ क्यों कि आत्मा अद्वितीय रूप है उसका स्वरूप से पतन होना असम्भव है, इस लिये सदा ही "मैं ब्रह्म हूं" इस प्रकार अप्रच्युत होवे, अटल भाव रक्खे यानी तत्व स्वरूप से सदा अपने आत्मा को, स्वरूप से अ-चल समझने वाला होवे यह तात्पर्य है ॥"

सर्वदा काल अपने आप को अखण्ड अद्वितीय आत्मा समझे रहना ही ज्ञेय समाधी है ॥ आत्मा से इतर कुछ नहीं है इस लिये वह सदा व्युत्थान से रहित है उसका व्युत्थान कभी नहीं होसकता है। यदि आत्मा में कुछ व्युत्थान होवे तो व्युत्थान ही रहेगा, मोक्ष कभी नहीं हो सकता है (क्यों कि वह व्युत्थान आत्मा के स्वरूप में रहने से सत्य ही होगा) परन्तु आत्मा सदा एक रस अव्युत्थान स्वरूप है ॥ इस अद्वितीय आत्मा के अन्तर्गत ही व्यवहार बना रहे, विद्वान की सदा अद्वितीय आत्म भाव रूप समाधी है और यही सदा श्री राम कृष्णादिकों की रही है ॥ इसी ज्ञेय समाधी को सह-जावस्था भी कहते हैं। इससे कभी व्युत्थान नहीं हो सकता है ॥

(१०) प्रश्नः—हे भगवन् अविद्या क्या है, कृपा करके कहिये और उस की निवृत्ति का उपाय भी कथन कीजिये ॥

उत्तरः—शब्द मात्र ही मुख से बोला जाता है और कानों से सुना जाता है, फिर गली स्तुति क्या है ? स्पर्श मात्र ही त्वक् से ग्राह्य है, चाहे सर्प हो, अथवा स्त्री हो, तब, फिर, एक बुरा. दूसरा अच्छा क्यों माना जावे ? ज़िव्हा रस मात्र का ग्राहक है फिर मीठा कड़वा कैसा ? चक्षु, रूप का ही ग्राहक है, फिर वस्तु स्व-रूपवान् तथा कुरूप वाली क्या दिखाई देती है ? घ्राण गन्ध मात्र का ग्राहक है फिर दुर्गन्धी सुगन्धी कैसी ? पृथिवी से इतर घट पट अन्नादिक पदार्थ क्या है। जो ग्राह्य हो !॥ बात यह है कि ग्रहण

रूप अविद्या की दृष्टि से अविद्या अपने में आप बहु रूप से मानी जा रही है, और विद्या को दृष्टि से केवल ब्रह्म ही अपने में आप विद्यमान है, उसी के सुखांश में जो दुःखाध्यास है, सोई अविद्या रूप नानाभाव है ॥ इसी को प्रकृति कहते हैं ॥

शङ्काः—यदि प्रकृति कोई पृथक वस्तु हो तो भेद वाद सिद्ध होगा ॥

समाधानः—यह बात नहीं है, और श्री वशिष्ठ जी ने कहा है:—

"नात्मनः प्रकृतिर्भिन्ना, घटान्मृन्मयता यथा
सन्मृन्मात्रं यथा चान्तरात्मैव प्रकृतिस्तथा ॥"

अर्थ यह है:—आत्मासे प्रकृति भिन्न नहीं है जैसेकि घटसे मृत्तिका रूपता भिन्न नहीं है । और जिस प्रकार सत् अर्थात् कार्य रूप घट मृत्तिका मात्र है, यह निर्णय है, इसी प्रकार प्रकृति आत्मा ही है (भिन्न नहीं है) ॥

"एतां दृष्टि मवष्टभ्य राघवाघ विनाशिनीम् ।
तिष्ठ निः सङ्ग सन्यास ब्रह्मार्पण मयात्मकः ॥"

अर्थ यह है:—हे राघव, इस पाप नाशिनी दृष्टिका आश्रय लेकर, अन्य का अभाव निश्चय रूप जो निःसङ्ग सन्यास है, जिसका स्वरूप ब्रह्मार्पण मय है, उसमें स्थित हो । यानी अन्य के अभाव निश्चय पूर्वक निरन्तर कूटस्थ अद्वितीय स्वरूप से स्थित हो यह भाव है ॥ अविद्या की निवृत्ति पूर्वक स्वरुप स्थिति का निरुपण श्री अष्टा वक्र मुनि ने इस प्रकार किया है:—

"हरो यद्युपदेष्टाते, हरिकमल जोऽपिवा ।
तथापि न तव स्वास्थ्यं, सर्व विस्मरणादृते ॥"

अर्थ यह है:—हर यानी महेश्वर यदि तेरा उपदेश कर्ता होजावे अथवा विष्णु भगवान, अथवा ब्रह्माजी, यदि उपदेष्टा होजावें, तब भी सर्व विस्मरण से बिना, तेरी स्वरूप में स्थिति रुपी विश्रांति,

नहीं होगी। भाव यह कि अविद्या को विस्मरण करना ही पड़ेगा। यह नहीं है कि अविद्या कुछ थी और विद्या से निवृत्त हो गई. किन्तु अविद्या पूर्व भी निवृत्त ही थी, परन्तु मान ली गई थी। पुनः विचार द्वारा अत्यन्त निवृत्त की ही निवृत्ति निश्चय हुई॥ विद्या से जन्य अविद्या की निवृत्ति नहीं है किन्तु ज्ञाप्य है, उस अविद्या की निवृत्ति का ज्ञान उत्पन्न हो आता है॥ अविद्या यदि कोई वस्तु हो तो मिथ्या कहने से निवृत्त नहीं हो सकती है, दो सत्यवस्तु, एक स्थान में नहीं रह सकते हैं, अलग अलग ही रहेंगे। यदि अविद्या कुछ हो तो ब्रह्म, ब्रह्म (व्यापक अन्नत अद्वैत) नहीं रह सकता है। (कुछ अविद्या रुप ही दूसरी वस्तु होगा) कारण यह है कि यदि दो वस्तु हो और उनमें से एक सत्य हो, और दूसरी मिथ्या हो, तो दोनो एकत्र रह सकते हैं, क्योंकि मिथ्या वस्तु को सत्य वस्तु से भिन्न दूसरे किसी स्थान को रोकने की आवश्यकता नहीं है॥ इसमें यह दृष्टान्त है कि जिस प्रकार एक ही रज्जु, भ्रम से मिथ्या सर्प रुप माना जाता है; उसके लिले रज्जु से इतर दूसरा स्थान नहीं हैं वह सर्प रज्जु ही हैं, इसी प्रकार ब्रह्म ही अविद्या तत्कार्य जगत रुप माना जा रहा है, परन्तु ज्ञान से निश्चय होने पर कि अविद्या और उसका कार्य प्रपञ्च वस्तुतः कुछ था ही नहीं पीछे एक सत् अद्वितीय अखण्ड अनन्त ब्रह्म ही था और रहेगा, यही जानाजाता हैं॥इस ब्रह्म ज्ञान रुपी विद्या से इतर दूसरा कोई उपाय अविद्या की निवृत्ति का नहीं हैं, यह निश्चय करलेना चाहिये॥ ॐ ॥

(११) प्रश्नः— हे भगवन् "अहं ब्रह्मास्मि,, "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "अहमेवेदंसर्वम्" नेति नेति,, इत्यादिक श्रुति सम्मत अपरोक्ष ज्ञान होने के पीछे, शास्त्र, उस विद्वान् को, जीवन्मुक्त, ब्राह्मण, ब्रह्मनिष्ठ

इत्यादिक नामों से कहते हैं, तथा श्रीमद् भगवद्गीता में श्री भगवान ने, भगवद्भक्त स्थित प्रज्ञ और गुणातीत नामों से उस विद्वान के लक्षण भी कथन किये हैं ॥ वह सम्पूर्ण लक्षण, ब्रह्मवेत्ताओं में चरितार्थ होने योग्य हैं, ऐसा न हो तो ज्ञान की क्या परीक्षा होगी ? परन्तु वे सब लक्षण नियम से विद्वानों में दृष्टि गोचर नहीं होते हैं इसका क्या कारण है और ज्ञानी के वास्ते, काल क्षेपण के लिये क्या उपाय है यह कृपा करके निरुपण कीजिये ॥

उत्तरः--ज्ञानी ऐसा होता है वैसा होता है, यह विचार अहंरुप ज्ञाता के विषय में हैं, सो अल्प है। ज्ञाता दृष्टि को छोड़ कर, ज्ञेय विषय में विचार को पुष्ट करना चाहिये कि "सदसच्चाहं" "सर्वं खल्विदं ब्रह्मैव" ॥ ज्ञानी जीवन्मुक्त होते हैं, विदेह मुक्त होते हैं, यह अन्य लोगों की, अर्थवाद रुप कल्पनायें हैं ॥ ज्ञानी अपने आप को सर्वात्मा नित्य मुक्त मानता है फिर विदेह मुक्ति जीवन्मुक्ति इत्यादिक परिछिन्न कल्पनाओं को, क्यों करेगा ? (यानी नहीं करेगा) ॥ जीवन्मुक्ति विदेह मुक्ति तथा महा विक्षेप से लेकर निर्विकल्प समाधी पर्यन्त, जो जो कुछ कल्पना हैं सब अविद्याके अन्तर्गत हैं, और जीव वाली दृष्टि से की गई है ॥ जहां कहीं शास्त्र में उपदेश मिलता है, अज्ञानी को आगे रख कर मिलता है ॥ वहां अज्ञानियों के नाना प्रकार के संशयों का समाधान किसी न किसी रीति से किया गया है और उन अज्ञानियों के प्रश्नों के उत्तर में यानी अज्ञ जनों ने, ज्ञानियों के चरित्र में जो शङ्कायें की हैं, उनके समाधान के लिये, प्रारब्ध भोग और जीवन्मुक्ति आदिक की, कल्पनायें की गई हैं ॥

प्रबुद्धों का यह निश्चय नहीं होता है कि मेरा प्रारब्ध हैं और मैं जीवन्मुक्त हूं, विदेह मुक्त हो जाऊंगा। उनके तो निश्चय में, केवल अद्वितीय अखण्ड ब्रह्म होता है कि "मैं नित्यमुक्त ब्रह्म हूं"

इस निश्चय से इतर कुछ नहीं होता हैं । यदि इस निश्चय के पीछे कुछ अन्य निश्चय भी होवें तो समझना चाहिये कि अविद्या तथा जीवत्व अभी शेष रहते हैं, उनकी सर्वथा निवृत्ति नहीं हुई । उस ज्ञाता को, अविद्या तथा जीवत्व की निवृत्ति के वास्ते, यही कर्त्तव्य है कि "मैं अखण्ड ब्रह्म हूं"॥ जितने काल पर्यन्त यह अन्य कल्पनाओं को करे, उतने काल में यह ऐसा विचार क्यों न करता रहे कि "मैं अखण्ड ब्रह्म सर्वात्मा हूं, सर्व मैं ही हूं, एक परिपूर्ण अखण्ड सत्ता है नानात्व कुछ नहीं है" इत्यादिक ॥

"परन्तु" "किन्तु" "ननु" "नच" इत्यादिक अन्य शङ्का को क्या अवकाश है, फिर असन्तोष का क्या कारण रह सकता है और क्या प्रष्टव्य अथवा कर्तव्य शेष रहता है ? ॥ श्री भगवद्गीता में, अधिकारियों के प्रति नाना उपदेश हैं, परन्तु सदसच्चाहं" इस मुख्य कथन रूप परम उपदेश को छोड़ कर अन्यथा प्रकार के और और उपदेशों को, क्यों ग्रहण किया जावे, क्योंकि "जो कुछ है सब मैं हूं" बस इस निश्चय से अधिक और क्या है, यानी कुछ भी नहीं है ॥

अविद्या यानी अहंता ममता रूपी जीवता को छोड़ कर "अद्वितीय अखण्ड ब्रह्म ही यह सब मेरा स्वरूप है" यही निश्चय दृढ़ रखना चाहिये, ऐसा न होगा तो जैसी २ जीवन्मुक्ति विदेह मुक्ति स्थित प्रज्ञता आदिकों की यह मनुष्य कल्पना करेगा वैसे २ ही उस को वर्तना पड़ेगा ॥ इतने व्यर्थके परिश्रमसे क्या लाभ है॥ जैसा ब्रह्म का निश्चय है कि "मैं अखण्ड अद्वितीय ब्रह्म नित्य मुक्त हूं" उसी ब्रह्म बुद्धि को दृढ रखना चाहिये कि "मैं नित्य मुक्त अद्वितीय अखण्ड हूं" यही यथार्थ निश्चय है, इसी में विश्राँति हैं ॥

"सर्वं ब्रह्मेति बुद्धं चेत्, नाहं ब्रह्मेति धी कुतः ॥
अहं ब्रह्मेति बुद्धं चेत्, किमसन्तोष कारणम् ॥

अर्थ—यदि यह जान लिया कि सब ब्रह्म है तो मैं ब्रह्म नहीं हूं यह विपरीत निश्चय कैसे ठहर सकता है। और जब यह जान चुके कि 'मैं ब्रह्म हूं" तब असन्तोष का कारण क्या रहा अर्थात् कुछ भी नहीं रहा ॥

काल व पण आदि शङ्का को छोड़ो, क्या ब्रह्म के कोई काल है क्यों व्यर्थ शास्त्रों के बोझ को ढोते हो ? "मैं ब्रह्म हूं"यह दृढ़ निश्चय क्यों नहीं रख सकते हो ? ॥ इत्योम् ॥

(१२)प्रश्नः—क्या विद्वान को स्वरुपानन्द आविर्भावके निरन्तर रहने के वास्ते सदा व्यवहार को अल्प रखने की आवश्यकता है अथवा नहीं ?

उत्तरः—यदि यथावत् ज्ञान हो चुका है, जैसा होना चाहिये, तब अज्ञान तो रहा नही. इस लिये चाहे व्यवहार भी हो परन्तु स्वरुपानुसंधान के विद्यमान रहने से स्वरुपानन्द का आविर्भाव यानी अनुभव भी बना रहता है और विक्षेप भी नहीं होता॥ चित्त की तीन प्रकार की अवस्था होती है:——

(१) एक अज्ञान सहित विक्षेप है यह अज्ञानी के चित्त में होता है सो अज्ञानी को व्यवहारिक विक्षेप बना ही रहता है:—

(२) दूसरा विक्षेप रहित अज्ञान है वह सुषुप्ति में होता है वहाँ आनन्द का भान है, विक्षेप नहीं है, क्योंकि अज्ञान मात्र सुख का विरोधी नहीं होता है ॥

(३) तीसरा अज्ञान रहित विक्षेप है, वह ज्ञानी को व्यवहार काल में होता है, परन्तु साथ में स्वरूपानुसंधान के विद्यमान रहने से वह विक्षेप जाता रहता है ॥

(१३) प्रश्नः—क्या व्यवहार काल में भी, विक्षेप के रहते हुये, स्वरूपानुसंधान बना रहता है ॥

उत्तरः—हां स्वरूपानुसंधान बना रहता है. परन्तु पञ्चदशीकार ने विद्वान तीन प्रकारके कहे हैं:—

(१) एक समाधी प्रधान ज्ञानी होता है उसमें "सिद्धो न पश्यति यतोऽधिगमत् स्वरुप" अर्थात् ज्ञानी सिद्ध जीवन्मुक्त व्यवहार को नहीं देखता है, क्योंकि स्वरुप को प्राप्त है, इत्यादि शास्त्र चरितार्थ होता है ॥

(२) दूसरा विवेक प्रधान ज्ञानी है, उसमें "मत्वा धीरो हर्ष शोकौ जहाति" यह शास्त्र चरितार्थ होता है—(यानी धीर ज्ञानी आत्मा को जानकर हर्ष शोक को त्याग देता है यह श्रुतिका अर्थ है)॥

(३) तीसरा व्यवहारी ज्ञानी होता हैः—उसकी अज्ञवत् पशु के सदृश विक्षेप युक्त अवस्था होती है, परन्तु वह स्वरुप के अनुसन्धान के सहित होती है ॥

ज्ञानी चाहे कोई भी हो, उसका निश्चय यही होता है कि "मैं नित्य मुक्त ब्रह्म हूं" ॥ श्री योग वशिष्ठ में बहुत ज्ञानी गृहस्थ ही कहे गये हैं, और सब ही जीवन्मुक्ति सहित विदेह मुक्त हुये हैं यह नहीं कि विदेह मुक्ति बिना जीवन्मुक्ति के हुइ हो और उनका व्यवहार भी रहा है सो ऐसे जनों के दृष्टि में अद्वैत अखण्ड शुद्ध ब्रह्म उनका आत्मा ही केवल है, अविद्या कहीं है ही नहीं ॥

(१४) क्या "आसुप्ते रामृते कालं नयेद्वेदान्त चिन्तया" यह श्रुति ज्ञानी विद्वान के लिये मरण पर्यन्त वेदान्त चिन्तन की विधी को कथन करती है अथवा मुमुक्षु के लिये?॥ प्रथम पक्ष तो युक्त हो नहीं सकता, क्यों कि जो विद्वान ज्ञानी है सो विधि निषेध से विर्निमुक्त कहा गया है, दूसरा पक्ष भी नही बनता है, क्यों कि मुमुक्षू भी विद्वान ज्ञानी होने वाला है, तब मरणान्त पर्यन्त वेदान्त चिन्तन की विधि कैसे हो सकती है, कृपा करके इस शङ्का का समाधान कीजिये ॥

उत्तरः—जैसे मुमुक्षु के प्रति "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जीजिविषेच्छतं समाः" अर्थात् इस जीवन काल में कर्मों को करते हुए शत वर्ष पर्यन्तजीने की इच्छाकरे ऐसी विधि है,ऐसेही तत्व जिज्ञासू के प्रति जब तक ज्ञान न हो तब तक चाहे मरण पर्यन्त हो आत्म साक्षात्कार के वास्ते वेदान्त चिन्तन की यह विधि है कि "जब तक सुषुप्ति न हो और जब तक मरण न हो, काल को वेदान्त चिन्तन पूर्वक व्यतीत करे ॥ ज्ञानी के लिये न कोई विधि है न उसको कुछ कर्तव्य है। जो अपने आप को ज्ञानी मानता हुआ अपने स्वरुप में कर्तव्य देखता है वह औरों में भी कर्तव्य देखता है ॥ परन्तु जो अपने आपको अद्वितीय, अखण्ड ब्रह्म, अकर्ता नित्य मुक्त, मानता है, वह कहीं किसी में भी कर्तव्य नहीं देखता है ॥ इत्योम् ॥

---

* हरिः ॐ तत् सत् श्री मङ्गल मूर्त्तये नमः *

श्री मङ्गलोपदेश रसायन

तृतीय परिच्छेद

पत्र मञ्जूषा ॥ ३ ॥

(१) ॐ सन् ८-५- १९१८ ईस्वी

मेरे प्रिय ! बाबू सीताराम जी ! शुभाशीर्वाद के पश्चात् विदित

हो कि आपका प्रेम पत्र आया, समाचार विदित हुआ यहां सर्व प्रकार आनन्द है, आप तो अपने आप को सदा आनन्द स्वरूप हो समझते होंगे; क्योंकि ऐसा समझना उसका फ़र्ज़ है, जिसने वेदान्त वाक्य को अपने कानों का भूषण बनाया है। प्रायः लोक कुछ का कुछ समझ बैठते हैं क्योंकि उनको इस बातका पता नहींकि हमारे कानों का भूषण क्या है, और कहाँ तक वेदान्त वाक्य का हम को आदर करना चाहिये, खैर जो हो खुशी उनकी अपने को तो उचित यही हैकि सदा अपने आप को आनन्द स्वरूप ही समझें और माता जी प्रभृति को यथोचित कह देना और लाला चरणदास अब तक नहीं आया। भक्त गुरुदास २ घण्टे में सत्ता सामान्य में समा गया। ऐसा ही सब का अन्तिम समाचार होना है॥

आपका—

स्वामी मङ्गल नाथ हृषीकेश।

(२) ॐ ——— २३-५-१८

श्रीमन्............

निवेदन है कि आपकी तरफ से केवल लिफाफे के ऊपर लिफाफा ही नहीं आरहा है. लिफाफे के भीतर भी बराबर लिफाफा आ रहा है शायद आप तमझते हों, कि जो लिफाफा आपने रक्खे हैं वे इस काम में न आजायें, खैर जो समझें, खुशी आपकी यहां तो इन बातों के समझने के लियेस्थान नहीं है क्यों कि वस्तु अपने आप में भरपूर निश्छिद्र है, इसमें सिवाय अपने आप के, दूसरे की गन्ध को भी मिलना ख पुष्प है. परन्तु आपने लिफाफे के भीतर कोरा कागज़ भी डाल दिया, फिर भी श्याही कलम का खर्च तो आप अपने शिर कर्ज ही समझेंगे। बस यही समझ तरण तारण में उपयुक्त है, अधिक की जरुरत ही क्या है ?॥

(३) ॐ ११—६—१८

श्रीमन्मेरे परम प्रिय.. निवेदन है कि आप का सविस्तर प्रेम पत्र पढ़ कर अति हर्ष हुआ उत्तर में देर लगी, इसमें कारण शरीर की शोचनीय दशा ही है, आप माफ फरमायेंगे ॥ शरीरादि अनात्म वर्ग अपने स्वभाव में स्थित है, और आत्मा भी अपने स्वभाव में अवस्थित है, सो आप जानते ही हैं, यह कोई अपूर्व बात नहीं है, क्योंकि यह वेदान्त की प्रथम पुस्तक का विषय है। आप के मत में तो आत्मा ही अपने अज्ञान से अनात्मा माना जाता है, फिर ज्ञान से अज्ञान नष्ट हुआ तो बाकी अपना आप ही रहता है, कौन किस के आगे किस का आविष्कार करे ? सब को नारायण हरि कह देना ॥

आपका.......

(४) ॐ ————— ६—७—१८

मेरे प्रिय........................ निवेदन है कि प्रेम पत्र आया, वृत्तान्त विदित हुआ अब बिलकुल शरीर ठीक है। आप इस शरीर की तरफ विशेष ध्यान न रक्खें, क्यों कि "अपुनस्मरणं मन्ये साधो विस्मरणं वरम्" [अर्थात् हे साधो मै पुनस्मरण से रहित विस्मरण को श्रेष्ठ मानता हूं-लेखक) ॥

"सर्गादावेव नोत्पन्नं दृश्यंनास्त्येव सर्वदा" (अर्थात् सर्ग पृथम से ही उत्पन्न हुआ नहीं है, दृश्य का सर्वदा ही अभाव है लेखक)॥

इत्यादि शास्त्रानुरोध से सर्वत्र, सर्वदा, सर्वथा, स्वात्मात्रोक शेषता ही श्रेयसी है, आगे आप सब कुछ जानते ही हैं ॥३॥

नोटः—एक पत्र में इस लेखक सीताराम ने पत्र द्वारा अपना भाव प्रकट किया कि श्री माण्डूक्य उपनिषद् की गौडपादीय कारिका में जो कहा है, कि "अद्वैते योजयेत् स्मृतिम्" यानी अद्वैत में स्मृति को नियुक्त करे सो मुमुक्षु वर्ग के

हितार्थं कहा है इस लिये सर्वथा ऐसा ही प्रयत्न लेखक को कर्तव्य है उसके उत्तर में लेखक की अकर्त्ता आत्मा में कर्तव्य आरोप को जो असावधानता हो उससे निवारणार्थ इस आगे के पत्र में सावधान किया है ॥ इसी पुस्तक की प्रश्नोत्तर मालिका के दूसरे तथा नवे प्रश्न के उत्तर को भी इसी विषय में विचार लेना चाहिये ॥)

(५) ॐ —— १८—१०—१८

श्रीमन् मेरे परम प्रिय, ("अद्वैते योजयेत् स्मृतिम्") क्या आप का कुछ अद्वैत ने विगाड़ किया है ? भाई अद्वैत का विस्मरण ही पहिले क्यों किया ? और अनुभूति स्वरूप अद्वैत के विद्यमान होने पर स्मृति को अवकाश ही नहीं है, पर क्या किया जावे, आपको तो अद्वैत में स्मृति शल्य ठोके विना सन्तोष ही नहीं होता। मेरी समझ में नहीं आता कि जब एक दफे अनुभूति हो चुकी फिर स्मृति का प्रयोजन ही क्या है । और अनुभूति तथा स्मृति का, समान काल, समान विषयक, विरोध भी है। पर आप से तो निष्क्रिय रहा हो नहीं जाता ॥ क्या कोई अद्वैत के स्मरण करने में बड़ाई है ? फिर यहस्मृति कितना दिन ठहर सकेगी? हमेंतो अद्वैता वस्थान ही, अच्छा लगता है, आगे खुशी आपकी ॥

आपका मङ्गलनाथ देहरादून ॥

(६) ॐ —— १—११—२८ हृषीकेश

श्री मन्मेरे परम प्रिय, शुभाशीर्वाद के पश्चात् सूचित किया जाता है कि कपड़े की कोई आवश्यकता तो नहीं थी। परन्तु आप के प्रेम का प्रवाह और उसका कार्य, सर्वथा अनिवार्य है, बहुत से मनुष्यों का सत्ता सामान्य में समाना, कोई अयोग्य वा अपूर्व नहीं है, किन्तु योग्य और सनातन है, क्यों कि वे सत्ता सामान्य के विशेष रूप हैं। विशेषों की सिवाय सामान्य में समाने के दूसरी

गति नहीं है। केवल प्रसिद्ध ज्वर का नाम ही बदनाम हो रहा है, सो होता रहो, उसकी इच्छा। आप तो सामान्य के विशेष रूप को बाध कर अपने निःसामान्य विशेष रूप में ही, सन्तुष्ट रहें, और आनन्द की अजीर्णता की शान्ति के लिये विचार अवश्य करते रहें इससे अधिक आप को क्या श्रम दिया जावे॥

और माता जी आदिक को यथायोग्य कह देना और समाचार अपनी राजी खुशी का लिखते रहें। लाला चरणदास, भगवान पुर गया है, और पं० रामलोटन जी, यहां ही राजी खुसी राम में ही लोट रहे हैं और सेठ लक्ष्मीनारायण जी बीमारों की खूब सेवा कर रहे हैं। यह सब सदा आप को याद कर रहे हैं सो करते रहें, उनकी इच्छा, आप को क्या ?। यह शरीर १॥ महीने से पैर में जखम होने के कारण खाट की सेवा करता रहा है, अब आराम है, सो करता रहे, मुझ को क्या ?

---

(७) ॐ १६—१२—1=

श्रीमन्............ओम् आनन्द। मैं किसी कार्य वश लाहौर गया था, आपकी पहली चिट्ठी लाहौर होकर कल मुझ को यहां मिली आज मैं उसका उत्तर लिखने की तैयारी करता ही था फिर आप की दूसरी चिट्ठी आज पहुंची चिट्ठी पर चिट्ठी पढ कर आनन्द हुआ। पर पैर के जखम की कुछ न कुछ शिकायत बनी ही रहती है। आपके आनन्द से ही आनन्द है। आप वासिष्ट के विचार से अपना दिल बहलाते हैं सो ठीक है। मन की निरालम्बलता भी सालम्बता ही है। आत्मा इन दोनों विकल्पों से अतीत है, सो हो वो, खुशी इसकी। आपके लिये तो सहजावस्था ही ठीक और पथ्य हैं, ज्यादा क्या लिखें॥

श्रीमद् मेरे परम प्रिय-निवेदन है कि पत्र आपका आया. वृत्त ज्ञात हुआ। आपकी भेजी हुई गन्धक का सेवन १॥ सप्ताह से हो रहा है पैर में बिलकुल आराम हो गया है. परन्तु जिस जगह जखम था, वहां अब तक त्वचा नहीं आई है और कुछ करडाई (कठिनता) भी नहीं हुई, आशा है कि शनैः शनैः सब कुछ ठीक होजायगा ॥

"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः, सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतराग भय क्रोधः, स्थित धीर्मु नि रुच्यते ॥"

(अर्थ ऊपर के इस श्लोक का यह हैः—दुःखों में क्षोभ रहित मन वाला, सुखों में स्पृहा रहित। राग भय और क्रोध से रहित, मनन शील मुनि स्थित प्रज्ञ कहलाता है ॥ लेखक)

---

(९) ॐ ३-५-१६ हृषीकेश

श्रीमन्मेरे परम प्रिय !

पत्र आप का मिला, हाल मालुम हुआ मैं लखनऊ गया था, अब कुछ २ उत्तराखण्ड की यात्रा करने का विचार है, आगे दाना पानी। और आज कल पञ्चदशीका विचार हो रहाहै, यहां सर्व प्रकार आनन्द हैं। परन्तु जहाँ तहां वायु का परिवर्तन बड़े जोर शोर से हो रहा है। अस्तुः ॥

"कल्पान्ता पवनावान्तु, यान्तु चैकत्व मर्णवाः।
तपन्तु द्वादशादित्याः न स्यान्निर्मनसः क्षतिः ॥

नोटः—(इस श्लोक का यह अर्थ हैः—कल्प प्रलय के पवन चलें, समुद्र (बढ कर) परस्पर मिल कर एक हो जावें, द्वादश सूय मिल कर तपने लगें तब भी मनो नाश वाले पुरुष की कुछ हानी नहीं होती है—लेखक)

१०) ओम् १८-५-२६ हृषीकेश

मेरे प्रिय ………… अब लाला चरणदास उदार काशी को गया है, और हमारे यहां पञ्चदशी का विचार हो रहा है, आपके भी परमानन्दोद्गार का परामर्श हो रहा होगा। इधर उधर से, वायु बड़ी तेज चल रहीं है, चलो इसके भी दिन हैं (लाहौर मार्शल्ला की बात है) बाह्य क्रिया में शायद कहीं कुछ बाधा पहुंचती भी हो, परन्तु अन्तरात्माऽनुसन्धान में तो कुछ बाधा को आशङ्का नहीं है क्योंकि "नासीदस्ति भविष्यति" यह निश्चय वर्तमान है। माता जी आदिक को यथायोग्य कह देना ॥

भवदीय मङ्गलनाथ ॥

---

(११) २-७-१६ हृषीकेश

श्रीमनमेरे परम प्रिय !

निवेदन है कि आप का वह एक प्रेम पत्र और दूसरा एक यह प्रेम पत्र, आये पढ कर आनन्द हुआ। वायु आकाश और शरीर आत्मा का दृष्टान्त दार्ष्टान्तिक भाव अच्छा है ॥

आज कल श्री भरत मन्दिर के सम्बन्ध में कुछ राजी नामे की बात चीत हो रही हैं, इस लिये फुरसत कम मिलती है, उत्तर देने में विलम्ब हुआ क्षमा करना ॥ पञ्चदशी का आज ध्यान दीप समाप्त हो गया है ॥ अन्याभावादसङ्गता ॥

नोटः—(अर्थ यह हैकि असङ्गता इस लिये हैकि अन्य का अभाव है. यह नहीं कि दूसरा भी कोई है,और उससे असङ्गता है, लेखक)

सीताराम का एक पत्र श्री महाराज की सेवा में इस प्रकार है:…

हरिः ॐ तत् सत् ॐ शान्तिः ॥ ३ कांधला

२८-७-१६

सिद्धि श्री सच्चिदानन्द स्वरूप परम पूज्य श्री १०८ स्वामी जी महाराज के चरण कमलों में दास सीताराम तथा माता आदिकों की साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम ॐ नमो नारायणाय स्वीकार होवे— आगे प्रार्थना है कि यहां आनन्द मंगल है आशा है कि आपका शरीर स्वस्थ होगा।

हे भगवन् जी, श्री योग वासिष्ठ स्थिति प्रकरण के ३५वें सर्ग में यह श्लोक है:—

"विषमा विषया भोगाः प्रतिवार्य पुनः पुनः।
उपरिष्ठात्परित्यज्य सेव्यमानाः सुखावहाः" ॥

इस श्लोक में "उपरिष्ठात्परित्यज्य सेव्यमानाः" इस पंक्ति का व्यवहार में आने वाला भावार्थ क्या है ? सो कृपा करके लिख दीजिये तथा पूर्वार्ध निर्वाण प्रकरण में ५६ सर्ग में लिखा है:—

"योऽन्तः प्ररूढः स्वभ्यासो ज्ञत्वशब्देन स स्मृतः।
यो न भुक्ते भुज्यमानानपि भोगान्स बुद्धिमान ॥"

इस श्लोक में भुज्यमान भोग क्या है ? क्या निर्वाह से अधिक विशेष संग्रह के निषेध में तात्पर्य है अथवा कुछ अन्य है ॥ अन्तः प्ररूढ स्वभ्यास तो यह है कि इदन्ता के बाध पूर्वक अद्वितीय ब्रह्माभिन्न साक्षी भाव में सावधानता। सब हेयोपादेयता क्या शेष रह गई हैं कृपा दृष्टि करके समाधानार्थ कुछ शब्द लिख दीजिये ॥

आपका दास सीताराम

पूर्वोक्त का उत्तर यह है:—

[१२] श्रीमन्........ ओ३म् २-६ १६ हृषीकेश

कुछ कार्य वश आपके २८ जुलाई के पत्र का भी उत्तर न दे सका क्षमा कीजियेगा ॥ [स्थिति प्रकरण २८ सर्ग में] अब लीजिये "उपरिष्टात्परित्यज्य सेव्यमानाः" इस पंक्ति का भावार्थः—

भोगों में दो अंश हैं, एक रमणीय दूसरा अरमणीय, अरमणि-यता स्वभाव सिद्ध है और रमणीयता अविद्या प्रत्युपस्थापित है अर्थात् अरमणीयता अंश रूप अधिष्ठान को आवर कर [आच्छा-दित करके] उसके स्थान में अविद्या रमणीयता अंश को उपस्थापित करती है इन दोनों में, [अरमणीयता अंश] अधिष्ठानांश अन्तर है और (रमणीयतांश) अध्यस्तांश, बाह्य [उपरिष्ठ] है अर्थात् रम-णीयता अंश को बाध्य कर अरमणीयतया (सेव्यमाना, अनुभूयमान भोग सुख तृप्ति का कारण है ॥ तथा पूर्व निर्वाण प्रकरण ५६ सर्ग में "यो न भुक्ते भुज्यमानपि भोगान् स बुद्धिमान्" इसका अर्थ यह है:—जो पुरुष अरमणीयतया अनुभूयमान भोगों को भी रमणीय-तया नहीं अनुभव करता है वह बुद्धिमान (ज्ञानी) है ॥

आज कल शरीर भी जर्जरी भूत हो रहा है, खुशी उसकी । श्री भरत मन्दिर की जाँच के लिये कमीशन अपनी कार्यवाही का आ-रम्भ करने वाला है, देखें क्या परिणाम निकलता है ।

"ब्रह्माहं ब्रह्म मच्छत्रुर्ब्रह्म सन्मित्र बांधवाः" । "ब्रह्मैव जगदा-कारं" ब्रह्मैव भुवन त्रयम् " । "इदं सर्व यदयात्मा" । "ब्रह्मैवेदं सर्व " ॥ ॐ ॥

[कमीशन के बारे में जो श्री स्वामी जी ने उपरोक्त पत्र में इस सेवक को लिखा था उसके उत्तर में हमने एक पत्र में यह कविता भी लिखी थी जिस की स्वीकृति श्री महाराज आगे के पत्र में देते हैं । वह कविता यह थी——

बात सुनी यह अतिशय भीषन् * निर्णय करने लगा कमीशन ॥
पहने कोट तथा पतलून * बैल न कूदे कूदे गून ॥
कही लिखी कुछ सुनी सताई * उछल कूद कर रोटी खाई ॥
हा हा ही ही निकसत दन्त * होत कमीशन का यूँ अन्त ॥

[१३] ॐ १०-६-१८ हृषीकेश

श्रीमन्...—आप का प्रेम पत्र आया पढ कर सन्तोष हुआ। यहां सर्व प्रकार आनन्द है। कमीशन के विषय की कविता यथार्थ है, परन्तु "आशा बलवती राजन् शल्यो जयति पाण्डवान" की न्याईं यह व्यवस्था है। आप फरमाते हैं कि "चरणों के विषय रहने को चित्त चाहता है"। इससे यह साबित होता है कि आप ने चरण को किसी एक देश में समझा है॥ यह कसूर माफी मांगने काबिल है?।

---

[१४] ओं १७-९—१८ ऋषीकेश

श्रीमन्......आप का प्रेम पत्र तो मिलो, पर पढ कर चित्त को तसल्ली न हुई क्योंकि यह न्याय नहीं है जो "उल्टा चोर कोत-वाल को डाटे" खेर "हार मानी झगड़ा जीता"। मेरे लिये भी तो अपने सेवकों के साथ जिद्द करना योग्य नहीं है चाहे सदुपदेश भी दुरुपयोग में क्यों न आवे। परन्तु स्मरण रहे कि चरण चाहे एक देशी भी हो पर उस विषय रहने की इच्छा वाला अपनी व्यापकता भूल बैठा है। यह अपराध तो क्षमा मांगने पर भी अ-क्षम्य है। अन्ततो गत्वा "देहदृष्टया तु दासो ऽस्मि" इस पृथा के अनुसार देह दृष्टि का ही विजय हुआ॥

पर ऐसा होना उचित नहीं था उचित तो यही था"अहमेवाधस्तां दहमुपरिष्टात्इत्यादि अभिनयानुसार, आत्म दृष्टीका ही विजय और अनात्मदृष्टि का पराजय। पर किया क्या जावे, सवेरेका भूला यदि श्याम को भी घर में आजाय तो भी, उसका कुछ बन सकता है, पर श्याम को भी, घर में वह न आवे तो आप ही बतलाइये कि उसके घर वाले निराश होंगे या नहीं, भाई जो पूर्व को पश्चिम समझ कर चल दिया वह जब तक अपने आप का भूला न सम-

झेगा तब तक वापिस लौट कर घर में न आवेगा, प्रत्युत उसको लौटाने वाले की भूल समझ कर, अपने दो पैर आगे ही रक्खेगा और श्रुति स्मृति पढ़ता जायगा ॥

आश्चर्य यह है, कि जो श्रुति स्मृति इसके घर का इशारा करती है उसके सहारे वह बाहर भागा जाता है। ऐसी दशा में सदुपदेश भी दुरुपयोग में आ सकता है, पर आवे खुशी उसकी। तुम्हें और हमें इससे क्या प्रयोजन है, सारांश यह है कि जो आपकी चरणों में रहने की इच्छा हुई है, उसकी निवृत्ति का उपाय सिवाय अपनी व्यापकता समझने के दूसरा कोई नहीं ॥ यदि यह व्यापकता पहले ही समझ ली होती। तो ऐसी इच्छा ही पैदा न होती। आशा है कि अब तो आपने अपनी भूल समझ कर अपने घर में लौटने का आरम्भ किया होगा। और जो आपने अपनी पीछली चिट्ठी में यह उपसंहार किया कि "आपका शरीर अब कैसा है" इसमें यह कहना है कि राई घटे न तिल बढ़े, जैसा शास्त्र कहता है वैसा ही है, आगे आप सब कुछ जानते ही हैं. क्योंकि एक विज्ञान से सर्व विज्ञान वेदान्त शास्त्र सम्मत ही है, अधिक क्या लिखें ॥

---

(१५) ओम् ३०-९-१८ हृषीकेश

श्रीमन् मेरे प्रिय ....आपका स्वर बदला हुआ देख कर अनुमान होता है कि कुछ तो मेरा सदुपदेश भी सफल हुआ। आप जैसे सत्पात्रो में, सदुपदेश का सफल होना, कोई आश्चर्य जनक बात नहीं है। किन्तु ऐसा होना यह सर्वथा आपके अनुरूप ही है। मालूम होता है कि आपने अपने को एक अद्वितीय ब्रह्म समझ लिया जिसके न समझने से, आत्मा ही अनात्मादि शब्दों करि व्यवहृत होता है अन्यथा ऐसी कविता न रचते, इससे यह

सिद्ध होता है कि ब्रह्म ज्ञान का हजम होना बड़ा ही कठिन है, दूसरा निकलने का द्वार नहीं मिलता तो वह कविता द्वारा ही बह-चलता है सो बहता रहो खुशी उसकी। चिदाकाश ज्यूं का त्यूं ही है। परन्तु यदि चिदाकाश का ज्ञान चिदाकाश में न समाया, किन्तु कविता द्वारा बाहिर बह चला, तो वह ज्ञान कौन काम का? दैव वश, यदि कविता का निरोध हो जाय, तो वह ज्ञाता को पेट फाड़ कर कुछ का कुछ बना देगी। अथवा कुछ भी कौन हो चिदाकाशमें अचिदाकाश तो न हुआ न है और न होगा, यही असदादि सिद्धान्त है॥

१५ अक्तूबर १९ को ८ बजे चरणदास के मकान हृषीकेश में, श्री भरत मन्दिर की जांच के लिये कमीशन का प्रथमा धवेशन होगा। आशा है कि लोग दूर दूर से आवेंगे। और सबको नारायण हरि कह देना॥ अधिकं क्या लिखें। आपको यहां लोग बहुत याद करते हैं, परन्तु करते रहैं, खुशी उनकी, आपको तो अपने आनन्द से काम॥

---

(१६) ओं २८-१०-१९ हृषीकेश

आपके प्रेम पत्र दो आये वृत्त ज्ञात हुआ। उत्तर में विलम्ब का कारण कमीशन की कार्यवाही हुई आप क्षमा करेंगे॥

जो कुछ आप फरमाते हैं वह सब अद्वैत रूप ही है। इसमें तो कुछ भी सन्देह नहीं कि अधिष्ठान सत्ता से अतिरिक्त अध्यस्त सत्ता नहीं है परन्तु इसमें मेरा कहना केवल इतनाही हैकि अध्यास विना अज्ञान के नहीं होता। अब आप स्वयं विचार सकते हैं कि कितना व्यवहार अज्ञान प्रयुक्त है और कितना व्यवहार सम्यक् ज्ञान प्रयुक्त है। मेरी राय में ज्ञानाज्ञान रूप सब व्यवहार अज्ञान

रूप ही है। इस वास्ते आपसे यह मेरा पूछना अनुचित न होगा कि अज्ञान निवृत्त हुआ या नहीं। अब इस प्रश्न की कोई आवश्यकता नहीं हैं कि "अज्ञान प्रथम था या नहीं" ॥ ज्ञान के प्रयोजन के लगभग ही स्मृति का प्रयोजन है । इस प्रकार विचार से अद्वैत में स्मृति की आवश्यकता और अनावश्यकता स्वतः ही स्फुरण होती है। बुद्धिमान के लिये इतना ही लिखना पर्याप्त हैं अधिक लिखना बुद्धि मत्ता के वहिर्भूत है। उचित समझ कर लिख दिया है आगे "मान चाहे न मान मैं तेरा महिमान" की कहावत मौजूद ही है। आपका मङ्गलनाथ ॥

---

(१७) ओं १२—५—२० हृषीकेस

श्रीमन् मेरे प्रिय……वहुत दिनों वाद खतोकितावत शुरू हुई । आपकी चिट्ठी से मालूम होता है कि आपने कई प्रेम पत्र भेजे है परन्तु मैं इस साल यहां कम रहा, और भक्त से पूछा भी पर पता कुछ नहीं चलता। कल मैं लखनऊ से यहां आया हूं अब अमावस्या के वाद उत्तर काशी जाने का सङ्कल्प है॥ जो कुछ अविद्या दृष्टि से कहा जाता है वह इस "सदसच्चाहर्जुन" विद्या दृष्टि से अलोक समझा जाता है क्यों कि उक्त श्री कृष्ण के ज्ञान का विषय श्रीकृष्ण से अतिरिक्त नहीं है। अतएव "त्व मह मिदं च सर्वं कृष्ण एव"

---

(१८) ओं १८-५—२० हृषीकेश

श्रीमन् मेरे प्रिय……. लाला चरणदास अपने ग्राम से कल यहां आया है उसका परसों मेरे साथ ही उत्तर काशी जाने का विचार है। यदि आप की मर्जी हो तो अब की वार गोदावरी स्नान का वड़ा भारी महात्म्य है। मैं उत्तर काशी से होकर चला आऊं। वह स्नान २१ जुलाई से शुरू होगा, इस साल उसका

कुम्भ है। उस दिन से सिंह राशि पर गुरु जी विराजमान होंगे, इस लिये किसी दूसरे तीर्थ की यात्रा फिर १३ मास तक वन्द रहेगी ॥ यदि, 'एकैव दृष्टिः प्रधानः वर्तते" तब तो उससे भी निर्वाह अच्छा हो सकता है, क्योंकि, उसमें सम्पूर्ण तीर्थों का निवास है फिर "अर्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं वृजेत्" यह न्याय भी सार्थक होगा और "नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रं मिह विद्यते" यह भी है ॥ यदि ज्ञान दृष्टि पुरः सर, गोदावरी स्नान हो, तो भी कुछ क्षति नहीं है, आगे आप सर्व प्रकार बुद्धिमान हैं। पता उत्तर काशी रियासत टिहरी ॥

---

(१६) ॐ २८–११–२० हृषीकेश

श्रीमन बाबू सीताराम जी—जय सच्चिदानन्द। प्रेम पत्र मिला, पढकर आनन्द हुआ मङ्गलनाथ यहां आगयाहै, परन्तु आप इस बात को न मानेंगे क्यों कि आप के मत में आना जाना खपुष्प है, फिर भी उसकी तरफ से शुभाशीर्वाद का तो स्वीकार आप अवश्य ही करेंगे, क्योंकि उसमें आप का प्रेम है ॥ उसके यहां कुछ काल ठहरने के विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता, क्यों कि वत मानातिरिक्त विषय में मेरी प्रज्ञा का प्रचार नहीं होता है। मैंने आप के सविनय साष्टांग प्रणाम को उसके चरणों में रक्खा था परन्तु उसने उसको हाथ में उठाकर अपने शिर पररख लिया,इससे मालुम होता है कि आज कल उसका होश हवास ठीक नहीं है क्योंकि चरणोंकी चीज़को शिरपर रखना यह बुद्धिके विरुद्ध हैं। बुद्धिमानोकी बुद्धि तो यहीहैकि यथायोग्य व्यवहार करना और अपने स्वरूपमें सदा असंभ्रांत रहना। आगे आप भी तो बुद्धिमान हैं; योग्यायोग्य के विषय में खूब विचार कर देखें कि बुद्धिमानों को क्या करना चाहिये योग्य

आज्ञा से अनुग्रहीत करते रहें।

आपका भक्त लोरिन्दचन्द,

(नोट—यह पत्र स्वयं श्री कहाराज ने भक्त लोरिन्दचन्द की ओर से विनोद पूर्वक लिखा था) ॥

---

(२०) ॐ १०—५—२१ हृषिकेश

श्रीमन्मेरे परम प्रिय,............ आनन्द स्मरण। आपके प्रेम पत्र की प्रतीक्षा हो रही थी, परन्तु आपका प्रेम पत्र देख कर वह शान्त होगई। आपका अनुभव अच्छा है और होना भी ऐसा ही चाहिये क्योंकि जिस अनुभव का कोई आश्रय और विषय नहीं होता है, वह बेचारा आनन्द से अभिन्न ही है, और आप भी शायद आनन्द में ही राजी हैं। प्रायः लोग अपने आपको आनन्द रूप समझ कर आनन्द में राजी नहीं रहते, यह केवल अद्वैतवाद का सिद्धान्त है। परन्तु जब आपआनन्दमें ही राजी हैं, तो फिर किसी के सिद्धान्त से आप को क्या प्रयोजन है॥ क्योंकि सब प्राणी आनन्द में ही राजी हैं और दुःख में नाराज हैं (इस लिये) यह भेद वादका डंका है। यदि इससे भी आप डरते हैं, तो फिर आनन्द ही आनन्द। क्योंकि "आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चन" श्रौतोपदेश तो सर्वथा श्रद्धेय है। अब के हमें गोरक्षा के उद्देश्य से, पंजाब में जाना होगा, क्योंकि यह हिन्दू सभा का आदेश है॥

---

(२१) ॐ ११-७-२१ हृषीकेश

श्रीमन्..................... आपका प्रेम पत्र आया पढ कर अति हर्ष हुआ उत्तर देने में विलम्ब के कारण माफी माँगता हूं अथवा किस अपराध के कारण कौन माफ़ी मांगे, यदि कहा जाय कि निर्विकल्प स्वरूपमें ऐसी कल्पना ही अपराध है तो कल्पनाका कारण

अज्ञान है और अज्ञान की निवृत्ति तो ज्ञान से ही होगी, माफ़ी मांगना फिर भी व्यर्थ है, अतएव माफ़ी की माफ़ी मांगना ही उचित है माफी कदापि उचित नहीं है,जो लोग माफी मांगना उचित समझते हैं, वे निःसन्देह अपने से अतिरिक्त दूसरा कुछ समझते हैं। अतएव उनके मत में माफी का मांगना एक शिष्टाचारवत् प्रचलित प्रथा मात्र है। और जिसके मत में, अपने से अतिरिक्त द्वितीय का दर्शन ही खपुष्प है, उसके मत में माफी का मांगना ऐसा है कि जैसे जागता पुरुष आंख भीच कर घुर्राटा मारे और यदि मुझ से पूछें तो मेरी ओर से उत्तर है। चुप!

---

(२२) ॐ १६-७-२१. हृषीकेश

श्रीमन्.........आपके प्रेम पत्र के साथ पारसल मिला। उस के उपलक्ष्य में आपको धन्यवाद क्यों न दिया जाय। यद्यपि आप कोधन्यवाद की इच्छा तो क्या होगी. परन्तु विना इच्छा के भी देने लेने का व्यवहार बना ही रहता है, सो बना ही रहे उससे आपको क्या ? अब के यहां मावा जी आ रही हैं आप की तो कोई यहां आने की आवश्यकता भी नहीं और न आने को अवकाश भी है क्योंकि परिपूर्ण में आना जाना असम्भव ही हो रहा है॥

---

(२३) ॐ १६-२-२२ हृषिकेश

श्रीमन्मेरे प्रिय.........आज कल सहयोग और असहयोग की खूब वायु भड़क रही है। इसके वेग में आकर आप अपने नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त एक अद्वैत सच्चिदानन्द स्वरुप में कोई असाध्य या कष्ट साध्य सङ्कल्प न कर बैठें क्योंकि आत्मा परमेश्वर और सत् सङ्कल्प हैं, जैसा सङ्कल्प करता है वैसा ही इसको अनुभव करना पड़ता है, आगे इसकी खुशी॥

मेरी राय में अपने आप में विश्राम पाना कोई बुरी बात नहीं है और सिवाय विश्राम के दूसरी गति भी नहीं है। भला बतलाइये कि यदि यहि, विश्राम न पावे तो क्या करेगा, आकाश तो अनाकाश होने से ही रहा॥ आत्मा के बाहर और भीतर कहीं अनात्मा नहीं है, किन्तु आत्मा ही अपने आपको अनात्म मान कर अविद्या का सद्भाव प्रकटता है और अपने आपको आत्माभान कर विद्या के सद्भाव को प्रकट करता है वास्तव में अविद्याऔर विद्या कोई चीज नहीं है, यदि आत्मा अपने आपको अनात्मा माने तो फिर इसको क्या आवश्यकता है जो यह अपने आपको आत्मा माने और विद्वान कहावे। ऐसी दशा में अपने आपमें सन्तोष करना ठीक मालूम देता है। आगे आप की खुशी, सबको यथायोग्य कह देना॥

---

(२४) ॐ ४—४—२२ लखनऊ

श्रीमन······· जय सच्चिदानन्द। पत्र का उत्तर लिखने में देर हुई क्षमाहो। "अहमेवेदं सर्वं" "न मत्तो न्यत्किञ्चित्" "ब्रह्मैवाहं" जब इस प्रकार समझ कर अपने से अतिरिक्त भाव से निराश होता है तब अपने स्वरूप में प्रवुद्धहोता है,तो अपने आपको नित्य मुक्त देखता है॥ जब शुक्ति से अन्यत्र रजत देखता है तब ही शुक्ति में रजताध्यास को अवकाश मिलता है, जब आत्मा से अन्यत्र अनात्मा देखा ही नही तो बतलाओ आत्मा में अनात्मा का अध्यास ही कैसे हो सकता है फिर उसकी निवृत्ति के लिये क्या ज्ञान सार्थक हो सकता है इस लिये सच कहा है कि ज्ञान अज्ञान एक फर्जी बात है। वास्तव में अपना आप है, जब सब ब्रह्म है, तो अपने आप को ब्रह्म समझने का सब को हक है॥ कहीं ब्रह्म ही अपने आपको ब्रह्म समझने में चकित होता है। यह केवल मोह

महाराज की महिमा है। वास्तवमें "ब्रह्मैव सन ब्रह्माप्येति" यह नियमअचल है ॥

॥ आपका एक ब्रह्म ॥

---

(२५) ॐ २२—४—२२ लखनऊ

श्रीमन्मेरे परम प्रिय.........बस हम अधिक नहीं समझ सकते केवल इतना ही समझते हैं कि ईश्वर की ओर से उपनिषद् द्वारा बारम्बार आवाज आ रही है "सर्वं ब्रह्म हि" "नेति नेति" बस यही सिद्धान्त समझ कर अपने आप में विश्राम करना ही उचित था परन्तु लोग इस मर्म को नहीं समझते और चिट्ठी पत्र का व्यवहार जारी रखते हैं। देखो कितनी बड़ी भारी बहिर्मुखता है। इसबहिर्मुखताको सरकार भी अच्छानहीं समझती परन्तु इसको रोकना चाहती है, पर क्या किया जाय लोग अपनी आदत से मजबूर हैं। अन्त में सरकार को ही लाचार होकर कार्ड और लिफाफों पर दूना महसूल लगाना पड़ा. इससे झखमार कर अपनी बुरी आदत से बाज आवेंगे। बस पहले समझे सो बुद्धिमान। आप अपने दोस्त मित्रों को खूब समझा दें कि बिना अत्यावश्यकता के कोई किसी को पत्र न लिखे अन्यथा इस बहिर्मुखता को रोकने के लिये सरकार को चौगुना पचगुना महसूल लगाना पड़ेगा फिर क्या करेंगे। बस पहले ही अपने सिद्धान्त को समझ कर उसमें विश्राम करना उचित है, अन्यथा हम यहाँ दस्तखत नहीं करेंगे।

---

(२६) ॐ २३—७—२२ ऋषिकेश

श्रीमन्.........यहां सब प्रकार आनन्द है, आप तो अपने आप को सदा आनन्द रूप ही समझते होंगे, क्योंकि बिना ऐसा समझने के दूसरी समझ समझ नहीं कहला सकती ॥ जब आपने ऐसा

समझ ही लिया कि "मैं सदा आनन्द स्वरूप हुं तब तो आप निः-सन्देह आपस की खतोकितावत बन्द ही करेंगे, क्योंकि आनन्द स्वरुप के इच्छा नहीं होती और बिना इच्छा के कुछ बनता ही नहीं दीखता। और सम्भव है शायद आपने अपने को आनन्द स्वरूप समझ कर अद्वितीय भी समझ ही लिया होगा बस ऐसा समझने से तो सब कुछ समाधान हुआ फिर खतोकितावत की आशा ही क्या है। यदि प्राचीन वासना के वेग से, कुछ कर्तव्य उपस्थित होगा तो निःसन्देह आप उसको भी सत्याग्रह करके निवृत्त करेंगे क्योंकि सत्याग्रह की आज कल व्यवहार में भी लोग काम में लाते हैं, क्या परमार्थ में उसका उपयोग करना, आप जैसे भद्र पुरुषों के लिये अनुचित है. मेरी समझ में तोप्राचीन वासना वेग को सत्याग्रह करके निवृत्त करना सत्पुरुषों के कर्तव्य से बाहर नही है। शायद आपने यह समझा होगा कि सत्यब्रह्म सत्याग्रह के अभाव से असत्य न होगा, ठीक है, परन्तु सत्याग्रह के अभाव से असत्याग्रह अवश्य प्राप्त होगा उसकी निवृत्ति बिना सत्याग्रह के कदापि न होगी। अब सिद्धान्त सुनिये कि विद्वान्को सर्वथा सन्तोष है, इसका संग्रह यह है किः—

"सर्वं ब्रह्मेति सत्यं चेन्नाहं ब्रह्मेति धी कुतः।
अहं ब्रह्मेति वुद्धं चेत् किमसन्तोष कारणम्॥

बस इसका अभिप्राय समझने से फिर अज्ञान को जगह नहीं है

आपका प्रिय वाबू सीताराम

नोटः—(यह विनोद के कारण श्री महाराज ने अपने बदले में अपने सेवक की ओर से हस्ताक्षर कर दिये हैं)॥

---

(२७) ॐ २७—८–२२ हृषीकेश

श्रीमन्……आपने यह तो निश्चय कर ही लिया होगा, कि "मैं

आत्मा हूं और एक ही हूं, उससे अतिरिक्त न अविद्या है और न उसकी निवृत्ति है। वस इस निश्चयसे ही इस निश्चयका अभाव सिद्ध है क्योंकि जब अविद्या और उसकी निवृत्ति नहीं है तब तो आप उक्त निश्चय का हेतु और फल कदापि नहीं निवृत्त कर सकेंगे फिर तुम्हें चुप रहना ही पड़ेगा। हमने तो भाई सब निश्चयों का हेतु अविद्या और फल उसको निवृत्ति सुना है अब तो तुम्हें यह मानना पड़ेगा कि निश्चय और उसका हेतु स्वरुप कार्य भी नहीं है यह आपमें बड़ी मुश्किल पड़ी। यदि आप ऐसा न मानते, और विना ही निश्चय के अपने आपमें विश्रान्त रहते तो आज आपको इस मुश्किल का मुकाबिला यानो कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता खैर अब भी कुछ नहीं विगड़ा "सवेरे का भूला शामको अपने घर में आजाय तो वह भूला नहीं कहलाता" आपको इन निश्चयों से क्या मतलब ॥

————

(२८) ॐ ११-१०-२२ लखनऊ

श्रीमन्..........अब मुझे पता लगा है कि आप इस बात को खूब समझ कर बैठ गये हैं कि मै ही एक वस्तु हूं सिवाय मेरे दूसरी कोई वस्तु वा अवस्तु नहीं है और मैं केवल नित्य मुक्त हूं और सच्चिदानन्द के नाम से प्रसिद्ध हूं तथा न मुझे कोई देखता है और न मैं किसी को देखता हूं क्योंकि मुझ से अतिरिक्त दीखने और देखने वाले का अत्यन्ताभाव है। सो भी मेरा स्वरुप ही है। यदि ठीक सच मुच ही आपने ऐसा ही समझ लिया है तो आप वेशक समझ लोजिये परन्तु आपकी इस समझ से उसको क्या फायदा है जो समझ और वे समझी से अलग बैठा है यदि आप का भी उसके साथ दोस्ताना है तो आप भी समझ और वे समझी

से अलग हो बैठिये, नहीं तो खतोकितावत बन्द कीजिये। ऐसे खतोकितावत की कोई आवश्यकता नहीं है जिसका समझ और बेसमझी के साथ कुछ भी सम्बन्ध पाया जाय और साफ कागज पर स्याही लगा कर उसका मुंह काला किया जाय ॥

हमें तो साफ कागज पर भाईसियाही का दाग अच्छा नहीं लगता आगे आपकी खुशी। यदि कोई राजी खुशी का समाचार लिखना हो तो हम किसी को मनाह तो नहीं करते हैं ॥ सब को यथोचित कह देना ॥ आपका और दूसरे का मैं कुछ नही जानता ॥

सिर्फ मङ्गलनाथ

(इस पूर्वोक्त पत्र का यह उत्तर दिया गया पाठक पसन्द करेंगे-)

मुझ से कुछ अब लिखा नहीं जाता * बे लिखे भी रहा नहीं जाता ॥
बे समझ और समझ का साक्षि हूं * दूसरा कुछ सहा नहीं जाता ॥
आप से आप ही जो केवल हो * दोस्ताना किया नहीं जाता ॥
खतकितावत करूं मैं कैसे बन्द * चुपके बैठे रहा नहीं जाता ॥
अपने ही तेज के उजाले का * भेद भी कुछ लखा नहीं जाता ॥
है समझ मेरी और मैं वह एक * ज्ञान बे फायदा नहीं जाता ॥
साफ कागज पै हो लिखा जो राम * तो बुरा भी कहा नहीं जाता ॥
कागज अपने में आप सुन्दर है * उसमें कुछ भेद आ नहीं जाता ॥
आप ही जो स्वरूप से उजला * उसका उजलापना नहीं जाता ॥
ऊपरी स्याहियां मिटेंगी जरूर * असली कालापना नहीं जाता ॥
साफ कागज पै दाग शायद हो * मुझ से ऐसा सुना नहीं जाता ॥

सब तरफ एक शुद्ध सीताराम * दाग कुछ भी कहा नहीं जाता ॥

आपका सीताराम

---

(२९) ॐ १—७—२५ देहरादून

श्रीमन्.........आपका प्रेम पत्र मिला पढ कर केवल आनन्द ही नहीं हुआ प्रत्युत बड़ा भारी विस्मय हुआ क्योंकि आपसे यह बड़ी भारी गलती हुई जिसकी स्वप्न मे भी सम्भावना नहीं थी। जब आप जैसे पढे लिखे बाबू जी भी ऐसी गलती करें तब दूसरे लोगों का तो ठिकाना ही कहां है, आपने अपने पत्र द्वारा इसका स्मरण किया है और स्मरण उस का होता है जो अनुभूति का विषय हो चुका हो। हम को आप की शपथ है न कभी हम अनुभूति के विषय हुए हैं और न होंगे किन्तु केवल अनुभूति मात्र हैं। ऐसी दशा में पत्र का लिखना भी सरासर गलत है॥ आपने ऐसे गलती क्यों की यह हमारा सवाल है। और माता जी प्रभृति को यथोचित् कह देना॥

---

(३०) ओं ८—७—२५ देहरादून

श्रीमन्..........हमारा तो वही वक्तव्य है कि अनुभूति कदापि स्मृति का विषय नहीं हो सकती यदि हो सकती है तो घटादिवत् जड़ होगी। इस लिये तुम अपने आपको अनुभूति मात्र समझो फिर दृश्य से निराश होकर तुम चुप चाप बैठे रहो, लिखने लिखाने से बाज आओ। तुम्हारा गलती करने का स्वभाव पड़ा है और हमारा क्षमा करने का स्वभाव है। देखिये तुम्हारी हजारों गलतियां पकड़ कर भी हम चुप चाप बैठे हैं अगर दूसरा कोई होता तो

बतलाता कि गलती करने वालों को कितनी सख्त सजा मिलती है, हमें तो सिवाय क्षमा के दूसरा कोई दीखता ही नहीं इसी से आप का बचाव हुआ है ॥

"अहमेव शिवः परमार्थं इति अभिधाद्न मात्र करोमि कथम्" हृषीकेश में बाबा काली कमली वालेके सदाव्रत में ३ दिन से हड़ताल हो रही है तू क्यों सोच करे । १५ तारीख तक तो हमारा यहीं रहने का विचार है फिर हृषिकेश और हरद्वार ॥ सब को यथायोग्य कह देना नहीं तो सब गुड गोबर हो जायगा ॥ हम लोग तो अनुभूति मात्र होकर भी अनुभाव्य को नहीं देखते, अहोधन्यावयम् ॥

राम राम जपो बैठ कर ज्ञान होना कठिन है क्योंकि "आत्मनो ज्ञान स्वरूपत्वात्" अहो नात्मनोऽन्यत्पश्यामि" ॥ आपका वही मङ्गल नाथ जिसके कोई नहीं साथ ॥

———

(३१) ॐ १६-७-१५ देहरादून

श्रीमन्......आपका प्रेम पत्र मिला पढ कर आनन्द हुआ मगर असलियत यह है कि "यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत अथ केनकं पश्येत्" इत्यादि श्रुति वाक्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि खतोकितावत का मूल कारण आत्मज्ञान नहीं है किन्तु अज्ञान है ऐसी कोई बात नहीं जो आप मुझे जनावें या मैं आपको जनाऊं क्योंकि तुम्हारे और मेरेमेंभेद एकमासा भी नहीं है । क्यों है न ठीक ! जबतक आप मुझे मित्र समझते हैं तब तक ही कीजिये खतोकितावत । जब समझ लिया अपने आपको जैसे का तैसा तब फिर खतोकितावत कैसा ? यह एक लक्ष की बात हैं इस कीमत बाजार में नहीं पड़ेगी । किन्तु वेदों के मस्तक में खोजिये । लेखक आपका मङ्गल नाथ जिसके कोई नहीं साथ असङ्गत्वात् ॥

———

(३२) ॐ २-६-२५ लाहौर।

श्रीमन्.........आपका प्रेम पत्र मिला पढ़ कर आनन्द हुआ। मैं कतिपय दिनों से यहाँ लाहौर में आया हुआ हूं परन्तु कुछ दिनों के पश्चात् हृषीकेश जाने का विचार है॥ आपको ज्ञान तो होगया होगा कि सिवाय ब्रह्म के सत् वो असत् कुछ भी नहीं है बस अब ब्रह्म का क्या कर्तव्य है, मालुम होता है कि आप निष्कर्त्तव्यता को आगे रख कर अपना निर्वाह करते हैं सो कीजिये, हमें क्या मतलब ?

सूर्य शीतल हो चन्द्रमा उष्ण हो और अग्नि अधः प्रसृत हो पर तू क्यों सोच करे ? हमेशा अपनी स्वरूप स्थिति का अनुभव कीजियेगा। और अपने कुशल समाचार से सूचित करते रहियेगा। और सबको यथायोग्य कहियेगा।

———

(३३) ॐ २५-१२-२५ हृषीकेश

श्रीमन.........नृसिंह तापनीय में, जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति तुरीय, ऐसी चार अवस्था कह कर तुर्य के ओता अनुज्ञाता अनुज्ञा और अविकल्प यह चार भेद कहे हैं उनके लक्षण यह हैं:—

ब्रह्मणो गुरु शास्त्राभ्यां बुद्ध्वा सर्वात्मतां ततः।
सर्वं वस्तुष्वनुस्यूतं पश्यन्नोता भवेदयम्॥ १॥
इन्द्रियाणि निरुध्याहं ब्रह्मे ति ब्रह्मतात्मनि।
येनानुज्ञायते सोय मनुज्ञातेति कथ्यते॥ २॥
ज्ञातृत्वं निराकृत्यतु चिदेकरसशेषता॥
अनुज्ञेत्युच्यते मुक्ति रविकल्प इतीर्यते॥ ३॥ और
"दाह्यं दग्ध्वा यथा वन्हिर्निर्व्यापारोवतिष्यते।
अनुज्ञैकरसस्तद्वच्चिन्मात्रः परिशिष्यते॥ यह भी वहीं कहा है

ज्ञान के आश्रय और विषय को त्याग कर ज्ञान मात्र परिशिष्ट अनुज्ञा शब्द का अर्थ है ॥ आपका.........

नोटः—इस व्यक्ति ने श्री महाराज से अनुज्ञा शब्द का अर्थ जो पूर्वोक्त श्लोक में पूछा था उस पर यह सब विचार किया है पूर्व के श्री महाराज के लिख कर भेजे हुए श्लोकों का यह अर्थ है:——

गुरु शास्त्र द्वारा, ब्रह्म की सर्वात्मता को जान कर पीछे सर्व वस्तुओं में अनुस्यूत (यानी व्याप्त आत्मरूप से) देखता हुआ यह (तुरीय साक्षी) "ओता" नाम से प्रसिद्ध होता है ॥

इन्द्रियोंका निरोध करके "मैं ब्रह्म हूं" इस प्रकार ब्रह्मरूपताको आत्मा में जिसने गुरु शास्त्र द्वारा जाना है। सो यह साक्षी अनुज्ञाता कहलाता है ॥ २ ॥

ज्ञातृता (यानी अहं) का निषेध करके चिद् एक रस शेष रहना अनुज्ञा नाम से कहा जाता है और मुक्ति को अविकल्प कहते हैं ॥३॥

जलाने के योग्य काष्टादिक को जला कर जिस प्रकार अग्नि निर्व्यापार (यानी विना जलाने की क्रिया के) शेष रह जाती है ॥ इस प्रकार "अनुज्ञा (तुरीय) एक रस चिन्मात्र शेष रहता है ॥ ४ ॥

(लेखक सीताराम)

---

(७४) ॐ २-५-२६ लखनऊ

श्रीमन्.........आपका प्रेम पत्र मिला. हर्ष हुआ। आपकी इच्छा वा विज्ञान के विरुद्ध जो कुछ कहा है वह सब वापिस करो और तीन काल में आत्मा एक अद्वैत है और सदा अकेला रहता

है यह जानकरवस आप सदा अपने आपमें सन्तुष्ट रहें, और भूलकर कदापिअपने आपको किसीजवाव सवालके फंदेमें न फांस देना चाहिये ॥ मैं अपने आपमें सन्तुष्ट हूं दूसरे की कल्पना करने में सर्वथा असमर्थ हूं, अतएव जवाव सवाल या धमकी देने से या दिलाने से मैं सर्वथा वाज आया आपको भी ऐसा ही होना उचित है ॥ अव आपको कुछ कहने को जगह है तो कहिये नहीं तो अपने आपमें सन्तुष्ट रहिये यथा अहम् । अव प्रश्नोत्तर के दिन गये और विश्राम के दिन आ गये हैं। आपकी मर्जी हो तो वेशक आराम और विश्राम करें नहीं तो याद रक्खो कि एक प्रश्न करोगे तो चार उत्तर देने पर भी पिण्ड न छूटेगा। क्यों है न लख की वात ? । आप अपने को ज्ञानी न समझ कर ज्ञान स्वरूप समझें तो और भी अच्छा होगा। और उससे भी अधिक अच्छा यह है कि समझने और समझाने को छोड़ कर वाकी है सो है, तेरी सदा ही जय" क्यों सुन्दर उपदेश है वाह ! वाह !

राम भरोसा हमको भारी * तीन लोक से मथुरा न्यारी ॥
हमको क्या किसी से काम * भजले साधु सीताराम ॥
वहां पर है कोई और तुम्हारा * उसको हरिहर कहो हमारा ॥
जिसके आगे सीताराम * उसका यह पूरण विश्राम ॥
राम नाम की मन में माला * वाहर कीन्हा कागज काला ॥

(लेखक के प्रार्थना करने पर कि आराम तथा विश्राम में जो अन्तर है, सो कृपा करके उपदेश कीजिये श्री महाराज उत्तर देते हैं: ——)

---

(३५) ओम् २७-५-२६ लखनऊ

श्रीमन्........जिसमें मन और वाणी का प्रवेश नहीं उसमें

शब्दों के अर्थ के अन्तर पूछना उचित नहीं है परन्तु आप के लिहाज और दबाव के वश कुछ कहना ही पड़ता है कि खेद और श्रम में जितना अन्तर है उतना ही अन्तर आराम और विश्राम में है अर्थात् खेद की निवृत्ति के अनन्तर आराम और श्रम की निवृत्ति के अनन्तर विश्राम है अथवा खेद और श्रम की निवृत्ति ही आराम और विश्राम शब्द का अर्थ है। परन्तु जिसने खेद वा श्रम देखा ही नहीं उसके आगे आराम और विश्राम की कथा कथनीय नहीं है। इस लिये भूल चूक में जो कुछ लिखा गया उसे वापिस करो। क्योंकि बाल की खाल निकालने में कुछ अक्लमन्दी या मुनाफा हासिल नहीं हो सकता यह बड़े बुजुर्गों की हिदायत है आगे जो न माने उसकी खुशी ॥

(३६) ओम् हृषीकेश

श्री महाराज से इस व्यक्ति ने पत्र द्वारा श्री योग वासिष्ठ के दो श्लोकों के अर्थ पूछे थे, उत्तर में जो अर्थ उन्होंने लिखे सो यह हैं:—

"उपशान्त समस्तेहं विगताखिल कौतुकं।
निरस्त वेदनं ज्ञान विद्रा केवल मास्यते ॥"

अर्थः—उपशान्त समस्तेहं = जागरित अवस्था और स्थूल शरीर के व्यापार के प्रतिषेध पूर्वक।

विगताखिल कौतुकम् = स्वप्न अवस्था और मानस व्यापार प्रतिषेध पूर्वक।

निरस्तवेदनं = सुषुप्ति अवस्था और बुद्धि व्यापार के प्रतिषेध सहित।

केवलं = त्रिविध व्यापार के अभाव पूर्वक केवल।

विद्रा = चैतन्य मात्र स्वरूप करके ही।

ज्ञेन आस्यते = विद्वान ने स्थित होना है ॥

"उपशान्तेन दान्तेन आत्मा रामेण मौनिना ॥

ज्ञातैवान्विष्यते ज्ञेन विज्ञानैकान्त वादिना ॥"

अर्थः—विज्ञानैकान्त वादिना = विवेकिना

आत्मारामेण = विरक्तेन

दान्तेन = निगृहीत वाह्येन्द्रियेण

उपशान्तेन = निग्रहीत मनसा

मौनिना = आत्म निष्ठेन ज्ञानिना

ज्ञातैवान्विष्यते ज्ञेन = योज्ञेयो ब्रह्मबुद्धयान्विष्यते स ज्ञातैव । कुतः ? ज्ञातृ भिन्न ज्ञेयाभावात् ॥ इत्योम् ॥

इति सीताराम गुप्त कृत श्रीमल्लोपदेश रसायनं सम्पूर्णम् ॥

ब्रह्मार्पण मस्तु शुभं भवन्तु ॥





अप्रैल सन् १६२६
इम्पीरियल प्रिंटिंग प्रेस चांदनी चौक, पास फौव्वारा में
बाबू रघुवरदयाल जी के प्रबन्ध से छपी ।



पुस्तक मिलने का पताः--

श्री दुर्गाप्रसाद जी का पुत्र

पोस्ट काँधला जिला मुजफ्फर नग

गृहस्थ के मंगाने पर वैरंग भेजी जावेगी